॥ ओ३म् ॥

हृदयोद्गार

इन्द्र

पं० अनन्तराम के प्रबन्ध से

सेठ रामगोपाल पं० अनन्तराम के सद्धर्मप्रचारक प्रेस

देहली में मुद्रित ।

सरस्वती देवी के उपासक–

पं० श्रीधर पाठक की सेवा में–

श्रीमन्महानुभाव !

आप से साहित्य-दीक्षा पाये विना भी मैं आर्यभाषा-काव्य में आपको अपना गुरु मानता हूं। इस मेरे सूखे हृदय में भी यदि क्षणभर के लिये कविता करने की इच्छा उत्पन्न हुई, तो वह आपके वनाष्टक और एकान्तवासी योगी की कृपा है ! इस लिए यह छोटासा प्रेमोपहार आपकी सेवा में समर्पित है। इसमें कविता नहीं—केवल कविता की नकल है। यहां सरस्वती का वीणा झंकार नहीं—केवल टूटी हुई सारंगी का बेसुरा राग है। परन्तु जो कुछ भी है—हृदय से निकला हुआ है—सच्चे हृदय का उद्‌गार है। आशा है आप इस छोटी सी भेंट को स्वीकार करेंगे।

इन्द्र

ईश प्रार्थना ।

राखहु भारत लाज, दयानिधि !

चहुँ दिश बहु अँधियारी छाई, सिर पर घन की गाज ।

डोले नाथ ! भँवर में नय्या, हाथ पसारहु आज ॥

सूने हाथ भिखारी बैठा, तज विद्या तज राज ।

करुणा आंख उठावहु भगवन् !, संवरें तो सब काज ॥

तेरी परम कृपा से ईश्वर !, दिव्य सजै अब साज ।

नीचे हो सिंहासन नीका, सिर पर उत्तम ताज ॥

मातृ-वन्दना ।

हे मातृभूमि ! तेरे, चरणों में सिर। नवाऊं ।

मैं भक्ति भेंट अपनी, सेवा में तेरी लाऊं ॥

माथे पै तू हो चन्दन, छाती पै तू हो माला ।

जिह्वा पै गीत तू हो, मैं तेरा नाम गाऊं ॥

जिससे सुपूत जनमे, श्रीराम कृष्ण जैसे ।

उस तेरी धूल को मैं, निज सीस पै चढ़ाऊ ॥

वे देश मानवाले, चढ़कर उतर गये सब ।

गोरे रहे न काले, तुझको ही एक पाऊं ॥

सेवा में तेरी अपने, भेदों को भूल जाऊं ।

वह पुण्य नाम तेरा, प्रति दिन सुनूं सुनाऊं ॥

तेरे ही काम आऊं, तेरा ही मन्त्र गाऊं ।
तन और देह तुझ पै, बलिदान में चढ़ाऊं ॥

काल को उपालम्भ ।

(१)

काल ! क्या दुखड़ा तुझसे रोवें ।
चिर चिन्ता से पकी आँख अब नैन नीर से धोवें ।
अनुपमधाम सहस्रकरमाली, अस्ताचल को जावें ॥
विक्रमराज यशस्वी राजा, दर दर हुए भिखारी ।
राम लषण से राजदुलारे, हुए गहन-वन-चारी ॥
तेरी महिमा देख काल ! जन हंसते औ रोते हैं ।
आनी सोच सोच कर बीती, हम धीरज खोते हैं ॥

(२)

काल ! तव विकट अनूठी चालें ।
छिन भर में तेरी करती है वध उलटी करवालें ॥
सुख सम्पति भरपूर देह में श्री का रहा बसेरा ।
भारत में जब हुआ नहीं था, महाकाल ! बल तेरा ॥
धर्म्मदिवाकर मनमुकुलों में, भरता था मुसक्यानें ।
सप्त सिन्धुओं के मणिमुक्ता फैलाते थे आनें ॥
यौवन में जन मात पिता के ऋण का कर निस्तारा ।
पुण्य सेतुओं से जाते थे, दुःख लोक के पारा ॥

(३)

समय वह सुमिर सुमिर अकुलावें ।
मातृभूमि का वैभव पहिला, किस विधि हम विसरावें ॥
आर्य्यनाम का ऊंचा झंडा, हिमगिरि पर फहराया ।
काल अँधेरी जब तक तेरा, यहां वेग नहिं आया ॥
आर्य्य-जाति-उपवन का सौरभ, उत्तम चहुँदिश छाया ।
काल आग ! तेरी लपटों ने, जब लग नहीं मिटाया ॥
आर्यावर्त्त दिवाकर चमका, दिनलक्ष्मी अधिकाई ।
कालरात ! तेरी अँधियारी, जब तक पास न आई ।

(४)

किधर वे गये विप्र तपधारी ?
जिन का तेज निहार लखे थी, खिली चन्द्रिका कारी ॥
चक्रवर्तियों के मुकुटों पर, जिन का पग-रज छाया ।
फटे चीथड़े में थी जिनकी, परम पावनी माया ॥
युद्ध-प्रलय का बादल उमड़ा, घना अँधेरा छाया ।
जिनके एक निषेध शब्द से, छिन में फट कर धाया ॥
सागर को जिमि नदियां पाकर चहुं दिश से उमड़ानी ।
सकल कलायें सुख सोती थीं, जिनकी पाकर बानी ॥

(५)

हाय ! वे क्षत्रिय-पुत्र कहां हैं ?
धर्म केतु फहराने वाले, वीर पवित्र कहाँ हैं ?

धर्म देश के रक्षा कारण, तृण सम प्राण बखाना।
जिसे कभी अपना कर माना, किया न कभी बिगाना॥
उज्ज्वल यश का कल्पवृक्ष, जिनका अति विस्तृत भावे॥
पहुंच रसातल तक रवि शशि का बिम्ब पकड़ने धावे।
जाति और निज देश सभी कुछ, "धर्म" माहिं जिन माना
धर्म-युद्ध में सीस कटाना, जिनका था निर्वाना॥

(६)

देश के लुटे अमोल ख़ज़ाने।
नाम नहीं उस सम्पत का, फिर कौन उसे अब माने ?
विजय-श्री के पीछे पीछे वाणिज भी चलता है।
जहाँ इन्द्र सा राजा हो, तहँ पर कुबेर बसता है॥
मणि-मुक्ता में सोते थे पर शान नहीं भरते थे।
सर्वस-दान किया तो फिर भी, मान नहीं करते थे॥
ऐसे थे वे वैश्य देश में धन सम्पत के स्वामी।
प्रभुहित कोश लुटाने वाले, भामाशा से नामी॥

(७)

काल तब दौड़ भयानक आई।
खिला बाग़ वीरान होगया, काल-रात सी छाई॥
पड़ा रम्य सब सिद्धि-लता पर, महाफूट का पाला।
चहुँ दिश से घिर आया कुहरा, मारन हेत निराला॥

सर सूखे सब गुण-वैभव के, धर्म-पद्म कुम्हलाया ।
कमल-नाश से कमला ने भी, विदागान तब गाया ॥
फूलों के थल पर अब देखो, खैर बबूर खड़े हैं ।
तेरी माया से सब टूटे, साल विसाल पड़े हैं ॥

(८)

नींद ने भारत को आ घेरा ।
वेद-भूमि पर हुआ घनेरा, महामोह का घेरा ॥
जिस विद्या ने देश देश में, ज्ञान आग सुलगाई ।
घर में ही अब उसपर देखो, अँधियारी सी छाई ॥
अपना सब कुछ भूल गये हम, बने पराये चेरे ।
काक पङ्क तन में अटकाये, रङ्ग भरे बहुतेरे ॥

(९)

काल ! यह तेरी है सब माया ।
ऊजड़ देशों ने शत-मुख से तेरा विक्रम गाया ॥
तन मन धन सब कर पर अर्पन, अतिशय दीन हुए हैं ।
जगत्-सेठ थे जो गुण-धन के, कौड़ी हीन-हुए हैं ॥
गुज़रा हुआ समय अन्धेरा, भावि धुन्ध में छाया ।
वर्त्तमान में किस आशा से, धरें पातकी काया ?
चहुँ दिश आग लगी दुःखन की , लपक लपक कर आवे ।
काल-वीर अपना सब दल-बल लेकर खाने धावे ॥

(१०)

विधना से प्रश्न ।

नाथ क्या कोई आस नहीं है ?
क्या भारत की भाग्य देवता, कालप्रवाह वही है ?
दयासिन्धु ! क्या आर्य जाति की, लतिका मुरझायेगी ?
आर्य्य वंश की दुनिया से क्या, शव्द ही उठ जायेगा ?
क्या अब हम लोगा का जीना रोना ही बस होगा ?
क्या अब आंसू चार बहाकर, मरनाही वस होगा ?

(११)

आकाश-वाणी ।

देश का दीपक फिर भी जरि है ।
भारत-माता का सिर नीचा, फिर भी वेगि उभरि है ॥
भारत-पूतों के भुजगन में, क्षत्र-तेज फिर भरि है ।
महादुःख का साँकर तन से टूट टूट गिर परि है ॥
जीवन के अतिचंड सपाटे देख पापि-जन डरि है ।
भीत-सियार-तुल्य करि सूरत इत उत खल संचरि है ॥
अत्याचारी के कर भीतर राजदंड थरथरि है ।
पाप दुष्ट का राज्य नसा कर, धर्मकेतु फरफरि है ॥
हो निराश मत भारतवासी, भारत आँख उघरि है ।
मोह और अभिमान जगत का, हो कपास तव जरि है ॥

* शुभम्भूयात् *

ग्रन्थ कर्त्ता की अन्य

पुस्तकें ।

प्रिंसविस्मार्क का जीवन चरित्र—मूल्य १॥)

नैपोलियन बोनापार्ट का जीवन चरित्र—दूसरी बार छप रहा है । मूल्य १॥)

उपनिषदों की भूमिका—मूल्य ।≈)

गुरुकुल गीत—मूल्य ≡)

मिलने का पता—

गुरुकुल-कार्यालय कांगड़ी

डा० खा० शामपुर-कांगड़ी

हरिद्वार

भारत आरती

देश के कल्याणार्थ अद्वितीय

पुस्तक
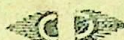
पिघल जायेगा पत्थर का कलेजा भी अगर होगा
नहीं मानुष्य है ऐसा कि जिसको न असर होगा
तड़प जाओगे कांप उठोगे पढ़ कर आरती मेरी
बदल डालेगी पल भर में दशा वह आरती तेरी

देवनारायण पांडे
सत्युगाश्रम

प्रधान

द्वितीय बार २००० — मूल्य)॥

लेखक शोभाराम धेनुसेवक

भारत आरती

१

कर जोरि प्रेम पसारि के प्रभुपद कमल सिर नाइके ।
अस्तुति करौं कुल देव की गिरिजा महेश मनाइ के ॥
सादर समरपण करतु हौं यह आज भारत आरती ।
जागो, उठो, सम्हलो, विचारो सुनहु सेवक भारती ॥

२

देश हाहा कार कर के रो रहा है सज्जनों ।
कार्य्य सारा नष्ट होता जा रहा है सज्जनों ॥
जलते रहते जिन घरों में झाड़ और फानूस थे ।
आज जाकर के वहां देखा तो बस कुछ फूँस थे ॥

३

रंग सारे देश में है बस अविद्या का चढ़ा ।
मूर्खता के ताज में अब शीश है सब का मढ़ा ॥
दुख की घटा छाई है अब बादल कपट जंजाल का ।
रक्त की धारा है बहती सामना है काल का ॥

४

मरते हैं बालक युवा नारी जरठ सब इस कालमें ।
फंस गये छोटे बड़े सारे सभी इस जालमें ॥
हैं वही भारत पुराना या कि कोई और है। ।
रात दिन मुझ को यही संसार में एक गौर है ॥

५

धनका तो है कहनाही क्या जाता है धर्म इस देश का ।
अब उठो बीरो दिखा दो मर्म कुछ इस देश का ॥
दुर्भिक्ष मानों देश में बैठा है पद को तोड़ कर ।
बस यही डेरा जमाया विश्व भर को छोड़ कर ॥

६

है ससकता कोई रोता और कोई चीखता ।
सानन्द मुझको देश भर में है न कोई दीखता ॥
ताप से कोई तड़पता भूख से मरता कोई ।
रोग से कोई अनल बिद्रोह से जरता कोई ॥

७

हर ठौर पर अब देशमें है मुर्दनी छाई हुई ।
जिस तरफ़ में देखो उदासी बस वहीं आई हुई ॥
जो नहीं लगता कहीं घर हो कि या मैदान हो ।
मन नहीं कोई यहां पर जो कि न हैरान हो ॥

८

लड़कर झगड़कर द्रोह कर सहते हैं नाना दुख सभी ।
जाते हैं पता तोड़ दौड़े कालके संमुख सभी ॥
लगता पता कुछ भी नहीं है प्रेम के संचार का ।
लेता न कोई नाम है आचार का न विचार का ॥

९

चोरी, चमारी, छल, कपट, जूआ तथा संग्राम के ।
नक़शे खिचे हैं दीख पड़ते द्वार पर हर ग्राम के ॥
चहुँ ओर से दारिद्रता फेरी लगा के कह रही ।
भारत उड़ावन हेतु मानों वायु यह है बह रही ॥

१०

त्रैताप से वंचित कभीं जो देश स्वर्ग समान था ।
सुर पुर से वैभव में अधिक जिस देशको अभिमान था ॥
ज्वर ताप मठिया और खांसी ने वहां है घर किया ।
भिक्षुक सदा बनकर रहो जनु देव ने यह वर दिया ॥

११

प्राचीन गवत्व का पता हा ! देश में मिलता नहीं ।
उत्तम प्रभा परिपूर्ण गन्धी पुष्प अब खिलता नहीं ॥
निज जाति के जातित्व का अभिमान हा ! जाता रहा ।
अब सत्य के सातित्व का अभिराम हा ! जाता रहा ॥

१२

रोते कलपते बिलखते हैं दिन बिताते आज कल ।
करते गुलामी हैं वही जो भोगते थे राज कल ।
भानु सदृश जगमगाते जो मुकुट धारी रहे ।
सर्वत्र जिनका राज था जो विश्व अधिकारी रहे ॥

१३

गति भाग्य में उन की मानों एक चक्र कैसा फेर है ।
बिनु अन्न मरने की प्रथा उनको न तनिक भी देर है ॥
जो शीश कि पहिले जड़े रहते जड़ाऊ तार में ।
ठोकरें खाते हैं फिरते आज वे निज कार में ॥

१४

इस देश का पैदा हुआ जाता है अन्न कहां कहां।
पर भूख से मरते हैं हम इस देश में देखो यहां॥
तन हीन काया छीन हो मुख को मलीन बनाय के।
इत उत लखहु बैठे हैं सब निज देश कार नसाय के॥

१५

दिन रात बैलों की तरह करते कमाई खेत में।
हल जोतते जिस पुरुष ने ग्रीषम बिताई रेत में॥
दो रोटियां तब भी नहीं मिलतीं हैं उसको हाय! हाय!!
देखिये किस तरह बिगड़ी भाग्य हमारी हाय! हाय!!

१६

सातित्व से जिन देवियों के देश था पूरण प्रभू।
जिनका कि केवल मात्र एक पति प्रेम था भूषण प्रभू॥
इसकाल के व्यौहार से उन का पता लगता नहीं।
सातित्व पूरण दीप जीवन अब प्रभू जलता नहीं॥

१७

काल से संग्राम करि पति को बचा जिसने लिया।
पति प्रेम से परि पूर्ण हो तजि राज बन जिसने लिया॥
निज देश हित निज भाइयों को तिलक दे सनमान करि।
रण भूमि में थी भेजती आता कभी जो महान अरि॥

१८

निज शस्त्र धरि संसार में जिसने पराजय अरि किया।
तज कर चिता में देह को निज धर्म संचय करि लिया॥
मिलता पता उन नारियों का अब कहां है हाय! हाय!!
स्वर्ग था संसार ही जिन की छटा से हाय; हाय!!

१९

इस देश के दुर्भाग्य से संसार म है खलबली ।
कीजिय कृपा अब हे प्रभू ! दुख की पवन है अब चली ॥
इस देश के वीरो उठो कब तक पड़े सो ओगे तुम ।
संसार तुम को लूटता है किस क़दर खोओ गे तुम ॥

२०

था ईश ही जिस के लिये थे हम झुकाते शीश को ।
पर गिर गये ऐसे कि अब हम पूजते हैं कीश को ॥
विद्रोह करि निज देश में हम ग़ैर के तावे हुये ।
सिकुड़े हुये मारे हुये हर ओर से दावे हुए ॥

२१

उत्तम छटा सुन्दर प्रभा से जो सुसज्जित देश था ।
जिस की चमक के साम्हने लज्जित सभी का भेश था ॥
जिस की नकल करते हुये पशु भी मनुष्यतु पा गये
जिस की सरण बैठे हुये शिशु सब गुरुत्वतु पा गये ॥

२२

उस देश के बालक हैं मरते ग़ैर के अन्दाज़ पर ।
निज कार्य्य की सिद्धी हैं करते ग़ैर के आवाज़ पर ॥
आपत्ति के उथान में करतव्य वंचित हो गये ।
दासत्वता को पूजि के निज मान रंचित हो गये ॥

२३

जिस देश की रचना से था संसार का मन मोहता ।
मिट्टी के पात्रों के लिये वह आज सब को जोहता ॥
भरि बाँस की नलियों में जो छत्तीस गज़ के थान को ।
देते थे इस संसार में निज भूप देश महान् को ॥

२४

लिखते हुये उनकी दशा को लेखनी अब रो रही ।
निज तन छिपावन हेतु उनको कठिनता अब हो रही ॥
ढाके की मलमल देख कर व्यौहार लंदन का रुका ।
इस देश के कष्टों के आगे विश्व का चन्दन झुका ॥

२५

शिक्षा प्रणाली देश की अतिशय भयानक रूप से ।
मरती चली जाती है पर पाती बहुत कम भूप से ॥
विश्व सर गुरु मान कर बैठा था इस ही देश को ।
हत भाग्य हा ! भारत वही विद्या न पर लव लेश को ॥

२६

माता पिता इस देश के एक दम से मूर्ख जपाट हैं ।
नैनुक्त नैन विहीन हैं खुलते न कपट कपाट हैं ॥
सन्तान पैदा करन में अति शीघ्रता करते हैं वे ।
हर साल बच्चा घर में हों बस ध्यान यह रखते हैं वे ॥

२७

पैदा किया बच्चा जहां बस अब उन्हें मतलब नहीं ।
बस व्याह की एक फिक्र है अब दूसरा मतलब नहीं ॥
पढ़ना नहीं लिखना नहीं दिन रात नीचों का प्रसङ्ग ।
क्यों कर न बिगड़े देश वह जिस देश का ऐसा प्रसङ्ग ॥

२८

इस देश की हालत प्रभु जी अब कही जाती नहीं ।
तस्वीर भारतवर्ष की मुझ से खिची जाती नहीं ॥
इस भव्य भारत को प्रभू अपनी शरण में लीजिये ।
बुद्धि इसकी शोधि के धन धान्य इसमें दीजिये ॥

२९

दस बीस ग्रामों में यहां बस पाठशाला एक है।
दस बीस हज़ारों में यहां बस बुद्धिवाला एक है॥
दूसरी कक्षा को जिसने पासयां पर कर लिया।
मात बस सारस्वती को उसने मानों कर दिया॥

३०

जिसका विधाता ठीक था उसने मिडिल तक पढ़लिया।
पाया रूपइया आठ जब दासत्व में सिर मढ़दिया॥
पढकर गुलामी करन की इस देश की अब चाल है।
समुदाय शिक्षित के लिये बस नौकरी एक माल है॥

३१

इट पिट किया जिसने ज़रा ऐनक लगाई आँख में।
पतलून वासकट डाट के गेटिस लगाई काँख में॥
उनका तो बस कहना ही क्या विद्या के वे अवतार हैं।
करतव्य पालन के लिये सच मुच के वे करतार हैं॥

३२

अमला कचहरी के बने बैठे दरीय बिछाय के।
एक गर्द खोरे टाट पर काज़िम फटा सा पसारि के॥
जम गई दूकान उनकी बैठे दफतर खोलकर।
लूटते हैं दुष्ट सब को दिन में डाका बोलकर॥

३३

दावा अनल चँहु ओर से घेरे है विद्या प्राण को।
ग्रह ग्रसित इतउत फिरतहै पावत कतहुँ नहिँ त्राण को॥
इस देश में दासत्वता को छोड़ कर अब कुछ नहीं।
कुलियों का बसअब देश है इसके सिवायकुछ भी नहीं॥

३४

होकर प्रमादी आलसी करतव्य को त्यागन लगे।
खड़यंत्र रचि इस देश के नेता बहुत मागन लगे॥
चन्दों की पुस्तक दाबि के गलियों में जो फिरने लगे।
उस दुष्ट को नेता सभी हैं आज कल कहने लगे॥

३५

उस मूर्ख विद्या हीन ने समझा कि उल्लू फँस गये।
दोचार मीठी बात की जब दाँत उसमें धँस गये॥
फिर क्या है नेता जी मज़े से देश के रक्षक बने।
ऐसे महाशय लोग ही इस देश के भक्षक बने॥

३६

उपदेश है तुमको जवानों भारती वीरो उठो।
उठ कर उठा दो देश को ऐ देश के वीरो सुनो॥
ममता जो है कुछ देश से तो स्वार्थ को छोड़ो ज़रा।
निन्दत घृणित दासत्व से दिल को तो अब मोड़ो ज़रा॥

३७

बलिदान आवश्यक है ऐसे काल में ऐ भाइयो।
तजि माल रक्षा मान की कीजिये सदा ऐ भाइयो॥
करके प्रतिज्ञा सत्य की स्वाधीनता अपनाइये।
विद्रोह फूट विसार के दासत्व को दफ़नाइये॥

३८

बृटिश के समराज्य में यदि राज्य तुमने न किया।
दासत्व तजि इस राज्य में यदि होमरूल अब न लिया॥
पड़ना पड़ेगा तब तुम्हें ऐसे विकट जंजाल में।
उपमा न जिसकी मिल सकेगी भाइयो इस काल में॥

३९

वीर बन कर सिंहवत रहना अगर स्वीकार हो।
गर्दन कटा दो शौक़ से यदि देश को दरकार हो॥
ममता करो निज देश से हर ओर से चित मोड़ कर।
सत्यता पर दृढ़ रहो माया विषय को छोड़ कर॥

४०

परवाह रत्ती भर न हो यदि जान जाता हो तो जाय।
निज देश की रक्षा करो यदि प्राण जाता हो तो जाय॥
पाठ पढ़कर पुरुखों का उन के पथ पर जाइये।
वीर धरि कर वीरवत अब न्याय पथ पर आइये॥

४१

देखि के अन्याय पीछे पग हटाना पाप है।
देश हितु की रण में आकर जी बचाना पाप है॥
देश हितु को छोड़ देना काम वीरों का नहीं।
चूक जाना है निशाना काम तीरों का नहीं॥

४२

करतव्य पालन करन में आलस्य यदि दिख लाओगे।
अपमान सहते २ एक दिन दाने को मर जाओगे॥
छोड़ दो दासत्वता को मत सहो अपमान तुम।
वीर पुरुषों की तरह से मर के दे दो जान तुम॥

४३

जब तक प्रतिष्ठा देश की तब तक तो तुम जीते चलो।
जब देश का अपमान हो उस काल तुम जी दे चलो॥
निज मान तजि अपमान का जीवन बिताना छोड़ दो।
सत्कार बिनु अमृत भी दे तो उसका पीवन छोड़ दो॥

४४

जिस देश ने पाला तुम्हें जिस देश में रहते हो तुम।
सोते हो तुम जिस देश में जिस देश में खाते हो तुम॥
उस देश की रक्षा करो यह ही तुम्हारा धर्म है।
उस देश की सेवा करो यह ही तुम्हारा कर्म है॥

४५

जीवन मयी संग्राम में यदि खेत को छोड़ोगे तुम।
सरवस्व अपना नाशि के तब जन्म भर रोओगे तुम॥
साहस करो बलिदान दो करतव्य को पालन करो।
ऐ! भारती वीरो उठो अब नींद को त्यागन करो॥

४६

करतव्य पालन करन में वंचित न होना चाहिये।
देश हित घर फूंकि के किंचित न रोना चाहिये॥
निज मान त्यागन मत करो आने दो आवे काल जो।
निज देश की रक्षा करो होने दो होवे हाल जो॥

४७

निज देश के सौभाग्य को सौभाग्य अपना जानिये।
जब होमरूलर देश हो तब राज्य अपना जानिये॥
धन धर्म और करतव्य पालन देश में तब होवेगा।
इस भव्य भारत में प्रभू जो! होमरूल जब होवेगा॥

४८

छोड़ना यदि राज हो तो छोड़ दो निजमान पर।
राणा प्रताप के खून हो चलते चलो इस आन पर॥
बन जाओ प्यारो होमरूलर देश की सेवा करो।
हासिल करो तुम होमरूल फिर शौक़ से मेवा चखो॥

कर्तव्य क्या होगा तुम्हारा वह तृतीय भाग में।
रक्खा गया है देश हेतु के विषय के अनुराग में॥
द्विज देवनारायण ने तुम को दी यह भारत आरती।
पढ़ कर के कुछ करिये ज़रा कहती यही है आरती॥

पं० देवनारायण पांडे सत्युगाश्रम ४६०
मुट्ठीगंज प्रयाग।

निवेदन

वी० पी द्वारा मगाने से १५ पुस्तक से कम न भेजी जावैगी १०० किताब मगाने पर ८ आना कमीशन दिया जावेगा इस आश्रम से शीघ्र ही प्रतिमास एक एक ऐसीही पुस्तक निकलैगी, जो महाशय १) पेशगी भेजकर ग्राहक श्रेणी में अपना नाम लिखालेंगे उनको दो साल के अन्दर ऐसी ही २४ पुस्तकें मुफ़्त भेजी जावैगी—

देवनारायण पांडे

श्रीरामोजयति

स्वराज्य-संगीत

संगीत वह सुधामय, सर्वेश फिर सुनादो।
हमको स्वराज्यभोगी, अखिलेश अब बनादो॥

लेखक शोभाराम धेनुसेवक

* श्री हरिः *

श्री तुलसी ग्रन्थमाला का ग्यारहवां पुष्प—

स्वराज्य-संगीत

प्रथम भाग

—:(लेखक):—

शोभाराम धेनुसेवक, लखनादौन

—:[प्रकाशक]:—

श्री तुलसी-ग्रन्थमाला कार्यालय

लखनादौन (सिवनी) मध्यप्रदेश

प्रथमावृत्ति २०००	श्री तुलसी सं २९८	मूल्य =)

Printed by B. Banwari Lal R. S. Press
Naugawan - Fatehgarh.

वन्दे मातरम्

विषय सूची

श्री जानकी वल्लभा विजयते

प्रस्तावना

प्यारे पाठको !

ग्रंथ माला का यह ग्यारहवाँ पुष्प- " स्वराज्य-संगीत " (प्रथम भाग) आप की सेवा में उपस्थित किया जा रहा है। अन्य पुष्पों की न्याई आप इस सेवा को भी स्वीकृत कर ग्रंथ माला का उत्साह बढ़ावेंगे।

आज कल देश के सौभाग्य से भारत में राष्ट्रीयता की अपूर्व लहर लहरा रही है। भारत के इस छोर से लेकर उस छोर तक स्वाधीनता की सुखद्ध्वनि गूंज रही है। सारा देश अपना जन्म सिद्ध अधिकार "स्वराज्य" पाने के लिये भारतीय हृदय सम्राट अहिंसा तथा शान्ति के अवतार सत्याग्रह की मूर्ति महात्मा गाँधी के नेतृत्व में (जो इस समय ६ साल के लिये कृष्ण मन्दिर में तपस्या कर रहे हैं) जी जान से जुट गया है। और बिना पूर्ण स्वराज्य (स्वराज्य) प्राप्त किये विश्राम न लेगा। लक्षणों से यही दिखाई दे रहा है।

ऐसे जागृत काल में भारतीय हृदयों में उच्च आकांक्षाओं को उत्पन्न करने तथा राष्ट्रीय भाव जगाने के लिये गद्य साहित्य के साथ २ सरसपद्य साहित्य की भी बड़ी आवश्यकता है। इसी आवश्यकता को सामने रख कर यह "स्वराज्य संगीत" नामक पुस्तिका लिखी गई है। यदि इस कृत्ति से मातृ भूमि के उद्धार में कुछ सहायता मिल सकी। तो लेखक अपने परिश्र[illegible] सफल समझेगा।

इस पुस्तिका की कई कवितायें कर्त्तव्य, कर्मवीर, समाज सेवक, "महिला संसार" भारत बन्धु आदि राष्ट्रीय पत्रों में समय २ पर निकल चुकी हैं। जिनका कविता प्रेमियों ने अच्छा आदर कर यह अनुरोध किया है कि ये कवितायें पुस्तकाकार प्रकाशित करदी जावें। जिस से संग्रह करने तथा राष्ट्रीय सभाओं के उत्सवों, राष्ट्रीय पाठशालाओं में प्रचारार्थ सुविधा हो। अस्तु उन महानुभावों के अनुरोध एवं देश की आवश्यकता को सामने रख कर "स्वराज्य-संगीत" का यह प्रथम भाग प्रकाशित किया जा रहा है। यदि राष्ट्रीय कविता प्रेमियो ने इस सेवा को स्वीकार कर इस के प्रचार में हमारा हाथ बटाया तो हम इसका द्वितीय भाग भी पाठकों की सेवा में शीघ्र ही उपस्थित करने का प्रयत्न करेंगे। ऐसी आशा है।

अन्त में हम अपने उन शुभ चिन्तकों तथा मित्रों का हार्दिक धन्यवाद देते हैं कि जिन्हों ने हमें धार्मिक सामाजिक गौरक्षा, तथा राष्ट्रीय साहित्य प्रचार में समय २ पर आर्थिक सहायता देकर हमारी कठिनाइयों को दूर किये हैं। सहायता देने वाले सज्जनों का नाम ग्रन्थ माला द्वारा प्रकाशित गौरक्षा सम्बन्धी चौथी पुस्तक "सुरेन्द्र-सुरभी सम्वाद" में धन्यवाद सहित प्रकाशित किया गया है। भविष्य में जो सज्जन ग्रंथ माला को सहायता देंगे। उन का नाम भी, (यदि वे चाहेंगे) तो प्रकाशित कर दिया जायगा।

विशेष प्रेम।

श्रीराम नवमी १९७९ } विनीत्। शोभाराम धेनुसेवक, संचालक
श्री तुलसी ग्रन्थ माला, लखनादौन सिटी.

वन्दे मातरम्

स्वराज्य-संगीत

प्रथम भाग

मंगला चरण

* ईश्वर प्रार्थना *

(१)

भगवन् स्वराज्य सूरज, भारत गगन से निकले ।
आशा प्रभात प्यारा, भारत भवन से निकले ॥ १ ॥
नाशे निशा निराशा, फैले प्रकाश पावन ।
स्वाधीनता सुहावन, भारत पवन से निकले ॥ २ ॥
हो दूर तम भयंकर, भागें उलूक पापी ।
भगवन् ! स्वतन्त्र कोकिल, भारत चमन से निकले ॥ ३ ॥
नस जा शृँगाल सत्ता, ऋषि भूमि वर विपिन से ।
स्वाधीन सिंह भारत, गौरव गहन से निकले ॥ ४ ॥
परतन्त्रता में हम को, सदियां गुजर चुकी हैं ।
स्वातन्त्र्यभाव अब तो, मन कर्म वचन से निकले ॥ ५ ॥

अन्याय दम्भ हिंसा, हट जाँये आर्य भू से।
आदर्श धर्म--धारा, प्यारे वतन से निकले ॥ ६ ॥
होवे स्वतन्त्र भारत, अब यह रहे न आरत।
उद्गार ये सभी के, अन्तर सदन से निकले ॥ ७ ॥
आपस की फूट नासे, बन्धुत्व वर विकाशे।
सत्वर हो आत्म शुद्धी, आतंक मन से निकले ॥ ८ ॥

* मनोवाञ्छा *

(२)

सङ्गीत वह सुधामय, सर्वेश फिर सुनादो।
हमको स्वराज्य भोगी, अखिलेश अब बनादो ॥ १ ॥
जो कर्म योग केशव, अर्जुन को था सिखाया।
कर के कृपा कृपामय, भारत को अब सिखादो ॥ २ ॥
जिस तान को श्रवण कर, मोहा था जग चराचर।
मुरली वही मनोहर, मोहन यहां बजादो ॥ ३ ॥
उस दिव्यदर्श को दृग, अब भी तरस रहे हैं।
स्वर्गीय दृश्य दर्शन, भारत में फिर दिखादो ॥ ४ ॥
पाकर तुम्हें कभी हम, जगके मुकुट मणी थे।
अब हैं पतित पतन से, प्रभुवर हमें उठादो ॥ ५ ॥
जग जाय देश सारा, पावे स्वराज्य प्यारा।
स्वाधीनता की हम में, सच्ची लगन लगादो ॥ ६ ॥
गौरव अतीत अनुपम, गूंजे समस्त जग में।
भारत की भव्यता फिर, संसार को बतादो ॥ ७ ॥
बन जाय आर्य भू फिर, क्रीड़ाथली तुम्हारी।
भारत विजय पताका, संसार पर उड़ादो ॥ ८ ॥

* बन्देमातरम् *

(३)

हम आर्यों की है तुही, आधार बन्देमातरम्।
जय शक्ति जीवन दान की, दातार बन्देमातरम् ॥ १ ॥
है तुही आदर्श जीवन, साध्य वर आराध्य तू।
ध्रुव ध्यान तेरा धर रहा, संसार बन्देमातरम् ॥ २ ॥
उत्कर्ष तेरा है अमित, उत्कृष्ट तू सुरलोक से।
तेरी छटा पर तुच्छ, स्वर्गागार बन्देमातरम् ॥ ३ ॥
हृत तन्त्रियां उठती हैं बज, हे मातृ! तेरे प्रेम से।
है भव्य भावों की तुही, भण्डार बन्देमातरम् ॥ ४ ॥
पाकर तुझे हम जी रहे हैं, आज भी संसार में।
तेरे लिये मरना हमें, स्वीकार बन्देमातरम् ॥ ५ ॥
सुख से पले बर्द्धित हुये, हैं मातृ तेरी गोद में।
बेड़ा तुझी से अन्त में, हो पार बन्देमातरम् ॥ ६ ॥
जीते वही हैं जी रहे, तेरे लिये जो लोक में।
जीते जो अपने हेतु हैं, भू भार बन्देमातरम् ॥ ७ ॥
म्रियमाण भावों को अमर, करती तू अमृत वर्षिणी।
करती अबल में बल तुही, संचार बन्देमातरम् ॥ ८ ॥
बनते हैं कायर भी सुभट, पड़ता है कानों में जहां।
तेरे समर सङ्गीत का, गुंजार बन्देमातरम् ॥ ९ ॥
है स्वर्ग से शत सौख्य प्रद, तेरा क्षणिक संसर्ग भी।
है तुही स्वाधीनता का, द्वार बन्देमातरम् ॥ १० ॥

———

* देशभक्त का प्रण *

(४)

लिया प्रण ठान अब तो हमने देशोद्धार करने का।
वतन के हेतु जीने का, वतन अपने पै मरने का ॥ १ ॥
स्वयं स्वाधीन होकर, देश को स्वाधीनता देंगे।
वतन आज़ाद में आज़ाद, होकर ही विचरने का ॥ २ ॥
अनेकों अब्दियां बीतीं, हमें परतन्त्र रहने में।
किया संकल्प अब तो, दास्यता दुखसे उबरने का ॥ ३ ॥
मिली स्वाधीनता सर्वेश से, हमको भी दुनियां में।
नहीं अधिकार कोई को, हमारे स्वत्व हरने का ॥ ४ ॥
अनेकों ठोकरें खाईं, सहे अपमान परवश हो।
लिया है ठान अब मनमें, अनादर तम से तरने का ॥ ५ ॥
सहेंगे आपदायें सब, सहर्षित देश के कारण।
हैं अमृत पुत्र हम ईश्वर, के क्या है काम डरने का ॥ ६ ॥
सुखी स्वाधीन भारत को, करेंगे बन्धु सब मिलकर।
लिया प्रण ठान मन में, देश के भंडार भरने का ॥ ७ ॥
बनेगा भव्य भारत फिर, निकेतन रम्य रघु बर का।
इरादा फिर करेंगे हरि, यहाँ अवतार धरने का ॥ ८ ॥

* स्वराज्यवादी की प्रतिज्ञा *

(५)

लेंगे स्वराज्य लेंगे, लेकर ही अब रहेंगे।
वह जन्म हक हमारा, हरदम यही कहेंगे ॥ १ ॥
अब तक सहे अनेकों, दुःख ज़ुल्म ज़ालिमों से।
पर अब तो ज्यादती हम, हरगिज़ नहीं सहेंगे ॥ २ ॥

दुनियां के देश सब ही, आज़ाद हो रहे हैं।
फिर हिन्द की नहीं क्यों, स्वाधीनता चहेंगे ॥ ३ ॥
भोगी बहुत गुलामी, अब तो बनेंगे स्वामी।
इस में जो आपदाएं, आवेंगी हम दहेंगे ॥ ४ ॥
अब तो स्वराज्य लेने का, प्रण ही कर चुके हैं।
जोरो जुलम के दुर्गम, दुर्गों को अब ढहेंगे ॥ ५ ॥
माँगा स्वराज्य बन के, भिक्षुक मिला न लेकिन।
भिक्षा का पात्र कर में, अब तो नहीं गहेंगे ॥ ६ ॥
पाया स्वराज्य किसने, भिक्षा में तुम ही कहदो।
अधिकार आत्म बल से, अब तो स्वयं लहेंगे ॥ ७ ॥
दारिद्र दीनता दुःख, भारत से अब विदा हों।
तुम में बहे बहुत हम, अब तो नहीं बहेंगे ॥ ८ ॥

* उद्बोधन *

(६)

उठो २ अब हे हिन्द वासी, कलेश काफ़ी उठा चुके हो।
विशाल भारत हुआ है ग़ारत, तमाम दौलत लुटा चुके हो ॥१॥
रहे न कपड़े तुम्हारे तन पर, न घर में खाना है एक दिन का।
विनास अपने की अब तो सबही, सामग्रियां तुम जुटा चुके हो ॥२॥
पड़े रहोगे पतन में कब तक, खा बूट जूतों की ठोकरें तुम।
रही ना ताक़त तुम्हारे तनमें, बे दम हो दमको घुटा चुके हो ॥३॥
रही तिजारत कला न कौशल, रहे न धन्धे बने हो अन्धे।
रही मजूरीही भाग्यमें अब, कुली हो किस्मत कुटा चुके हो ॥४॥
तुम्हीं बतादो तुम्हारे घरमें, रहा है क्या अब धनधान्य बाकी।
विदेशियों से समस्त वैभव, कपास सदृश ऊड़ा चुके हो ॥ ५ ॥
वही हो तुम जो किसी समय पर, शिरोमणी थे समस्त जग के।
निज शूरताई से शत्रुओं के, समर में छक्के छुटा चुके हो ॥ ६ ॥

* आर्त्त-आकांक्षा *

(७)

हे दयामय क्या कभी, वे दिन हमारे आयँगे।
परतन्त्रता से पार हो, स्वाधीनता हम पायँगे ॥ १ ॥
बहु अब्धियां बीती हमें, दुःख दास्यता में हे विभो।
क्या आज भी भारत निवासी, दास ही कहलायँगे ॥ २ ॥
खग मृगों तक को मिली, स्वाधीनता जब आप से।
हम आर्य बंचित उस से, कब तक और होते जायँगे ॥ ३ ॥
होकर मनुज अब हम यहाँ, मानवगिने जाते नहीं।
पद दलित हो और कब तक, ठोकरें हम खायँगे ॥ ४ ॥
भारत वही जो था कभी, क्रीड़ा निकेतन आपका।
अब है पतित वह प्रेम अपना, क्या नहीं दर्शायँगे ॥ ५ ॥
पश्चात अवनति के अभय, उत्थान पाते हैं सभी।
अन्तिम पतन हम पा चुके. अब भी न आप उठायँगे ? ॥ ६ ॥
नैराश्य तिमिराच्छिन्न निशि का, अन्त कर भगवन्त क्या।
उत्थान दे कर के हमें, आशा प्रभात दिखायँगे ॥ ७ ॥
हे गुण निधे क्या हम कभी, गौरव शिखर आशीन हो।
जब देश जय स्वर्गीय, भारत वर्ष गौरव गायँगे ॥ ८ ॥

* स्वराज्य की कामना *

(८)

दे दो स्वराज्य दे दो, वह तो हमारा हक है।
लेकर ही चैन लेंगे, यह प्राण जब तलक है ॥ १ ॥
कह दो तुम्हीं धरम से, क्या हम अयोग्य अब भी।
भारत की योग्यता में, अब भी तुम्हें क्या शक है ॥ २ ॥

देंगे स्वराज्य देंगे, लेकिन दिया न अब तक।
कह कर नहीं जो देता, होता उसे नरक है॥ ३॥
देना ही अब पड़ेगा, तुम को स्वराज्य भाई।
आधीन देश रहने में, हिन्द की हतक है॥ ४॥
आज़ाद जब कि तुम हो, आज़ाद हम भी होंगे।
स्वाधीनता का हम ने, तुम से पढ़ा सबक है॥ ५॥
देगी स्वराज्य सत्वर, भारत को यह स्वदेशी।
अब तो हमें विदेशी, भाती नहीं भड़क है॥ ६॥
आज़ाद हिन्द होगा, परतन्त्र ना रहेगा।
भारत विजय की कानों, में पड़ रही भनक है॥ ७॥
गान्धी की गन्ध अनुपम, फैलेगी सब जहाँ में।
...त के लिये समर्पित, जिनका शरीर तक है॥ ८॥

* स्वदेशी का सौन्दर्य्य *

(२)

हमें संसार के सौन्दर्य्य से, सुन्दर स्वदेशी हो।
दिखे बाहर स्वदेशी, भाव भी अन्दर स्वदेशी हो॥ १॥
फले फूले रहे गुलज़ार, गुलशन ये स्वदेशी का।
स्वदेशोद्धार कर्त्ता सिद्ध, सर्वेश्वर स्वदेशी हो॥ २॥
तजें कपड़े विदेशी हम, सजें तन को स्वदेशी से।
मरें जब देह पर भगवन्, कफ़न खद्दर स्वदेशी हो॥ ३॥
नशे नैराश्य तम प्रगटे, स्वदेशी शशि शुभाशा का।
हमें जीवन प्रदायक, रत्न रत्नाकर स्वदेशी हो॥ ४॥
सुदर्शन चक्र सा निर्भय, चले नित चक्र चरखे का।
दुराशा दैन्य दारिद्र देश, भारत हर स्वदेशी हो॥ ५॥

वही है देश का सत्पुत्र, सज्जित जो स्वदेशी से ।
कुलाधम वह न जिस के, अङ्ग पर अम्बर स्वदेशी हो ॥६॥
दिलावेगी स्वदेशी ही, हमारे स्वत्व फिर हम को ।
न हारेंगे कभी जो हाथ में, खंजर स्वदेशी हो ॥ ७ ॥
दिखे घर २ में फिर वह दृश्य, सुन्दर शुचि स्वदेशी का ।
दया मय शीघ्र वर विजयी, विदेशी पर स्वदेशी हो ॥ ८ ॥

* खादी की खूबियाँ *

(१०)

हमको स्वराज्य तूही, खादी दिलाने वाली ।
भारत का भाग्य तूही, खादी खिलाने वाली ॥ १ ॥
व्यापार देश के सब; चौपट किये गये हैं ।
होगी उन्हें हे खादी, ! तूही जिलाने वाली ॥ २ ॥
महरे जुलाहे कोरी, भूखे तड़प रहे हैं ।
तूही उन्हें हे खादी, रोटी मिलाने वाली ॥ ३ ॥
तुझ को डुबा विदेशी , भारत को लूटते थे ।
है तू विदेशियों की , हिम्मत हिलाने वाली ॥ ४ ॥
चरखे का चक्र तुझ बिन, बेकार सा पड़ा था ।
उत्साह से उसे फिर , तूही चलाने वाली ॥ ५ ॥
है राष्ट्र प्राण तुझ में , क्या खूबियाँ भरी हैं ।
हर भेद साम्य का तू , अमृत पिलाने वाली ॥ ६ ॥
जातीयता का तूही , अब चिन्ह बन रही है ।
देशाभिमान हम में, तू है जगाने वाली ॥७॥
भंडार फिर भरेगी , भारत का तूही खादी ।
दुर्गन्ध दास्यता की , तू है जलाने वाली ॥ ८ ॥

होगा हरा भरा फिर, तुझसे चमन स्वदेशी।
खुश दिल बहार झाँकी, तूही दिखाने वाली ॥९॥
परतंत्रता की तूही, खादी खदेड़ देगी।
आज़ाद हिन्द को अब, तूहै बनाने वाली ॥ १० ॥

* बिदेशी वस्त्रों की बिदाई *

(११)

टलो यहां से बिदेशी वस्त्रो ' न अब तुम्हारी है चाह हम को।
तुम्हीं से भारत हुआ है गारत, किया हैं तुमने तबाह हमको॥१॥
उद्योग धंधे सभी हमारे, किये हैं आकर विनष्ट तुमने।
नशा के चरखे स्वदेशी करघे, है दी मुसीबत अथाह हमको ॥२॥
कहाँ हमारी महीन मलमल, पड़ा है ढाका में आज फाका।
बने निकम्मे जुलाहे कोरी, मिलाये तुमसे गुनाह हमको॥३॥
तजेंगे तुमको सजेंगे तन पर, पवित्रप्यारा स्वदेशी खद्दर।
हमारे गान्धी महात्मा ने, ये दी है कामिल सलाह हमको ॥४॥
रुई हमारी खरीद सस्ती, उसी के कपड़े मढ़े हैं हम पर।
हुए धनी तुम गरीब भारत, दिखाई गारत की राह हमको॥५॥
बढ़ाई तुमने बेरोजगारी, बना तुम्हीं से बिहाल भारत।
पड़े हैं पेटोंके आज लाले, दिखाता मुश्किल निबाह हमको॥६॥
कहाँ है भारत की वो तिजारत, रही दलाली ही देश में अब।
जहां दिवाली थी अब वहाँपर, दिखाती होलीकी दाह हमको॥७॥
हो धन्य गान्धी जी जीयो जुग२, चलाया चरखेका चक्र फिरसे।
मिली तुम्हींसे स्वदेश हितकी, नवीन निर्मल निगाह हमको॥८॥
करोड़ों चरखे चलाके कातेंगे, सूत सुन्दर पवित्र अपना।
स्वयं बुनेंगे उसी के कपड़े, न अब तुम्हारी है आह हमको ॥९॥
बिदाई लो तुम बिदेशी वस्त्रो' बना है भारत अब स्वावलम्बी।
करेंगे मिलकर स्वदेश उन्नत, मिला है निर्भय उत्साह हमको॥१०॥

* चरखे का सुदर्शन चक्र *

(१२)

चला कर चक्र चरखे का, गरीबी को नसावें गे।
गई संपत्ति को भारत में, लाकर फिर बसावेंगे ॥१॥
था डूबा क्लेश सागर में, डुबा कर देश चरखा को।
मगर अब भूल कर भी हम, न उर कर से खसावेंगे ॥२॥
है आशा पास होंगे हम, स्वदेशी की परीक्षा में।
लखें हम को सफल वे जो, कसौटी पर कसावें गे ॥३॥
विदेशी वस्त्र फैशन में, हुए बर्बाद फंस कर हम।
न अब हम आपको इस पाप, कीचड़ में फंसावेंगे ॥४॥
बिदेशी हमको बेदामों का, कह कर दास हंसते थे।
खड़े होंगे पदों पर अपने, अब हम ना हंसावें गे ॥ ५ ॥
कती घर की बुनी खादी, मिटावेगी ये बरबादी।
उसी को प्रेम से पहिनेंगे, ओढेंगे डसावें गे ॥६ ॥
सुदर्शन चक्र ज्यों हरिका, चले यह चक्र मस्ताना।
इसी से देश को उन्नति, शिखर पर हम लसावेंगे ॥७॥
वसीला निर्धनों का धर्म रक्षक, रमणियों का ये।
सुखी स्वाधीन भारत को, इसी से हम बनावें गे ॥८॥

* चरखे से स्वराज्य प्राप्ति *

(१३)

—चरखा से लेंगे स्वराज्य —
-स्वराज्य मेरे प्यारे=

चरखा चलावेंगे; दारिद्र जलावेंगे, उन्नत करेंगे समाज।
—स्वराज्य मेरे प्यारे० ॥१॥

भारत के रोगों का, बेकार लोगों का, चरखा करेगा इलाज ॥
—स्वराज्य मेरे प्यारे ०—॥ २ ॥
चरखा न चलने से' देशी धन टलने, से होता था भीषण अकाज।
—स्वराज्य मेरे प्यारे ०— ॥ ३ ॥
रुई हमारी है वस्त्र हमारे हों , होगा हमारा अनाज ॥
—स्वराज्य मेरे प्यारे ०॥४॥
अपने प्रयोजन की चीजें बनावें' न होंगे किसी के मुंहताज ॥
—स्वराज्य मेरे प्यारे०॥५॥—
धारें खदेशीको, त्यागें विदेशी को, भारत समुन्नत हो आज।
—स्वराज्य मेरे प्यारे ०॥६॥
—चरखा से लेंगे स्वराज्य—

* भारत वासियो जागो *

(१४)

भारत निवासी कब तक, सोते पड़े रहोगे।
अपमान भार कब तक, ढोते पड़े रहोगे । १ ॥
हे वीर वंश जो क्यों, कायर बने हुए हो।
परतन्त्रता में कब तक, रोते पड़े रहोगे ॥ २ ॥
तुम जन्म सिद्ध अपना, अधिकार भारतीयो।
बन के गुलाम कब तक, खोते पड़े रहोगे ॥ ३ ॥
भारत हुआ है गारत, आपस की फूट से ही।
विष बीज और कब तक, बोते पड़े रहोगे ॥ ४ ॥
खो कर के आत्म गौरव, क्यों पद दलित बने हो।
कब तक हा ! और अवनत, होते पड़े रहोगे ॥ ५ ॥
पूर्वज तुम्हारे क्या थे, तुम क्या हुए हो सोचो।
उस यश पै कालिमा क्या, पोते पड़े रहोगे ॥ ६ ॥

दारिद्र दैन्य दुस्सह, दौरात्म्य दुख से दब कर।
मुख आंसुओं से कब तक, धोते पड़े रहोगे ॥ ७ ॥
जड़ता जलधि में पड़ के, खाये अनेक गोते।
क्या आर्य अब भी खाते, गोते पड़े रहोगे ॥ ८ ॥

* देश की पुकार *

(१५)

उठो अब देश के भक्तो, करो कल्याण भारत का।
लगा दो देश हित सर्वस. बढ़ा दो मान भारत का ॥ १ ॥
बिसारो फूट आपस की, पसारो देश में एकता।
उबारो देश को दुःख से, करो अहसान भारत का ॥ २ ॥
मुसलमाँ आर्य जैनी सिख, सभी हम देश भ्राता हैं।
भगाओ द्वेष आपस का, लगाओ ध्यान भारत का ॥ ३ ॥
हमारी मातृ भू भारत, मही हम पुत्र सब उसके।
परस्पर बन्धु सब मिल कर, करो गुण गान भारत का ॥४॥
कहो हम देश के सर्वस, हमारा देश सर्वस है।
हमारी देह भारत की, हमारा प्राण भारत का ॥ ५ ॥
यही संगीत गूंजेगा, हृदय वीणा से मरते तक।
हमारा देश भारत है हमें अभिमान भारत का ॥ ६ ॥
बनो प्रेमी स्वदेशी के, करो निज देश का आदर।
धरो सुख देश टुकड़ा खा, करो जल पान भारत का ॥ ७ ॥
भुलाओ मोह भड़कीली, विदेशी भ्रष्ट चीजों का।
विदेशिन से बचाओ, वीर बन धन धान्य भारत का ॥ ८ ॥
बनो तुम पूर्ण उद्योगी, वणिज वैभव करो वर्द्धित।
पतन से पार कर सत्वर, करो उत्थान भारत का ॥ ९ ॥
सुखी स्वाधीन रखा कर, रमाथल देश भारत हो।
रहे नित पल्लवित फूलत, फलित उद्यान भारत का ॥ १० ॥

* हमारी कामना *

(१६)

करेंगे देश की सेवा, यही दिल में समाई है।
भलाई मुल्क की ही में, हमारी भी भलाई है॥ १॥
पतन से देश को उन्नत, करेंगे हम सभी मिल कर।
मिलेगी जय हमें इस में, यही देता दिखाई है॥ २॥
मुसलमां आर्य जैनी, पारसी बुध सिक्ख ईसाई।
हुआ जो देश में पैदा, हमारा देश भाई है॥ ३॥
वतन है हिन्द हम सब का, भला उसका ही चाहेंगे।
सभी ने मुल्क ख़िद्मत, के लिए यह देह पाई है॥ ४॥
मुहब्बत ये न टूटेगी, न हम में फूट फूटेगी।
दिखा देंगे ये दुनियाँ को, न अब हम में जुदाई है॥ ५॥
हमारा ध्येय निर्मल है, हमारा लक्ष्य है निश्चल।
स्वदेशी देश हित व्रत की, लगन हम ने लगाई है॥ ६॥
करेंगे प्राप्त अपने स्वत्व, विघ्नों से न बिचलेंगे।
युगों के बाद फिर स्वाधीनता, मिलने को आई है॥ ७॥
गहेंगे अस्त्र सत्याग्रह, निरंकुशता नसाने को।
सचाई है जहाँ, ईश्वर वहां होता सहाई है॥ ८॥

* रहने-दीजिये *

(१७)

हमको वतन के वास्ते, बरबाद रहने दीजिये।
साहिब सुधारों से हमें, आज़ाद रहने दीजिये॥ १॥
कहते हो क्यों अधिकार हमने, दे दिये सब हिन्द को।
ये खुदा के वास्ते, फ़रियाद रहने दीजिये॥ २॥

कह रहे तुम भूल जावें, जख़्म हम पंजाब का।
कहते हैं हम भी बाग़, जलियां, याद रहने दीजिये ॥ ३ ॥

जल्लाद डायर के लिये, तुम चाहते हम से क्षमा।
कहते हैं हम इस मामले की, स्याद रहने दीजिये ॥ ४ ॥

कर रहे हैं हम मदद. उन पीडितों की प्रेम से।
हम चाहते सरकार ये, इमदाद रहने दीजिये ॥ ५ ॥

तुम जताते हो जगत को, हिन्द है हम से सुखी।
करते हैं हम विनती ये, नकली नाद रहने दीजिये ॥ ६ ॥

हो मुबारक आप को ही, टाईटिल तमगे ख़िताब।
चहिये न हम को पास ये, परसाद रहने दीजिये ॥ ७ ॥

रहिये बने हम को सताने, के लिये निष्ठुर पिता।
लेकिन हमें सत्याग्रही, प्रहलाद रहने दीजिये ॥ ८ ॥

* प्रहलाद का सत्याग्रह *

(१८)

पिता अधिकार पा अन्याय, करना तुमने ठाना है।
हमारा प्रण नहीं अन्याय, पर मस्तक झुकाना है ॥ १ ॥

पिता जी शक्ति पाकर तुम, जो अत्याचार करते हो।
हुआ मालुम तुम्हें संसार से, अब शीघ्र जाना है ॥ २ ॥

तुम्हें अधिकार है राजन, हमें बन्दी बनाने का।
हमें भी स्वर्ग से आनन्द , प्रद वह जेल खाना है ॥३॥

गिरादो हम को गिरि पर से , हुताशन में जला डालो।
डुबादो बांधि वारिधि में , पिता जी जो डुबाना है ॥४॥

पिता शूली तुम्हारी से, नहीं प्रहलाद डर सकता।
न मानो तो चढ़ा देखो, जो शूली पर चढ़ाना है ॥५॥

न अब अणुमात्र चल सकता, हूं सत्याग्रह से मैं अपने।
सदा जय सत्य की होती, यही जग को दिखाना है ॥६॥

तुम्हारे पास में पशुबल है, मुझ में आत्मबल राजन।
निरंकुशता तुम्हारी आज, इससे ही नसाना है॥७॥

पिता अधिकार कर सकते हो, मेरी देह पर लेकिन।
हमारी आत्मा को तो, असंभव वश में लाना है ॥ ८ ॥

भयंकर यातनाओं से, भयों से धमकियों से डर।
पिता इतिहास में निज को, नराधम ना लिखाना है ॥९॥

तुम्हें रक्षक या भक्षक निज, नहीं मैं मान सकता हूं।
नियन्ता सृष्टि का रक्षक है, मेरा मैंने माना है ॥ १० ॥

पिता या शक्ति दीनों पर जो, अत्याचार करते हैं।
समझ लो लोक दोनोंमें, नहीं उनका ठिकाना है ॥११॥

समझ सकते न तुम राजन, न मैं भी मान सकता हूं।
तुम्हें पशुबल मुझे भी, आत्म की शक्ती बताना है ॥१२॥

तुम्हें अभिमान पशुबल का, भरोसा ईश का मुझ को।
बचावेगा वही मुझको, यही दिलमें समाना है ॥१३॥

हुआ परिणाम पशुबल पर, विजय प्रहलाद ने पाए।
लो पाठक पाठ इससे, तुम विजय गौरव जो पाना है ॥१४॥

—o—

—* दमन का दिवाला —*

(१९)

दिवाला शीघ्र निकले गा, अरे थोथे दमन तेरा ।
खिजां से खूब उजड़ेगा, अरे ज़ालिम चमन तेरा ॥१॥
सताले और थोड़े दिन, ऐ बेदिल बे गुनाहों को ।
यहां से शीघ्र ही होगा, अरे गर्वी गमन तेरा ॥२॥
हमें लाचार कर तूने, झुकाया खूब चरणों में ।
हमी विपरीत अब इसके, दिलोवेंगे न मन तेरा ॥३॥
अरे कायर निहत्थों को, रंगाया पेट के बल क्यों ।
लखेंगे शीघ्र ही हम भी, अरे पापी पतन तेरा ॥४॥
बहुत तू कर चुका शासन, यहां से अब उठा आसन ।
हमारा देश है भारत, नहीं है यह वतन तेरा ॥५॥
दबाले और थोड़े दिन, दमन कारी तू दुखियों को ।
निहत्थे निर्बलों की आह, से होगा निधन तेरा ॥६॥
दमन से रह नहीं सकता, कभी भी यह अमन कायम ।
करेगा यह दमन ही अन्त, मैं निश्चय शमन तेरा ॥७॥
मिलेगी आत्मबल को जय, दमन तेरे पशुबल पर ।
चकित संसार देखेगा, गिरेगा अब भवन तेरा ॥८॥

—स्वराज्य-सिद्धान्त—

(२०)

यद्यपि अब अधिकार हीन हैं, तदपि हम रखते हैं मान ।
हैं स्वराज्य के योग्य सर्वदा ही हम आर्यों की सन्तान ॥

× × × × × ×

है स्वराज्य ही ध्येय हमारा, जन्म सिद्ध अधि कार महान
यही चाहते भारत वासी, नहीं किसी से मंगते दान ॥

—गन्धी गुणागान—

(२१)

धनि २ गान्धी जी महाराज, भारत क्लेश नसाने वाले।

साजा सत्याग्रह का साज, रखली भारत माँ की लाज।
[illegible] त को सम्पन्न स्वराज्य, गान्धीं तुम्हीं दिलाने वाले ॥१॥

—धनि २ गांधीजी महराज ०—

फूंका असहयोग का मंत्र, निष्फल किया निरंकुशयंत्र।
भारत मां को सुखी स्वतंत्र, गान्धी तुम्हीं बनाने वाले ॥२॥

—धनि २ गाँधी जी महराज०—

हम भी ईश्वर की सन्तान, हमारे भी अधिकार समान।
फिर क्यों सहें हमीं अपमान, जगतमें आर्य कहानेवाले ॥३॥

—धनि २ गान्धीजी महराज०—

धरूंगा ईश्वर पर बिश्वास, करूंगा अत्याचार बिनास।
हरूंगा भारत मां की त्रास, प्रतिज्ञा पूर्ण निभाने वाले ॥४॥

—धनि २ गान्धीं जीमहराज०—

जुग २ जियो राष्ट्र वर बीर, भारत गौरव गुण गंभीर।
हर कर मातृ भूमि की पीर, निर्भय तुम्हीं बसानेवाले ॥५॥

—धनि २ गांधी जी महराज०—

भरते भारत का भंडार, करते पराधीनता क्षार।
भारत मां का बेड़ापार, गान्धी तुम्हीं लगाने वाले ॥६॥

———

—गान्धी की आन्धी—

(२२)

सन्त गान्धी ने भारत में, अजब आंधी चलाई हैं ॥
कि जिसने देश दहसत दुख, निरंकुशता नसाई है ॥१॥
बनाया था हमें डरपोंक, दब्बू स्वार्थ शासन ने ।
मगर गान्धी ने हम में, बीरता बांकी बसाई है॥२॥
रहे डरते जबाँ से हक, अपने माँगने में हम ॥
मगर अब बीरवर गान्धी ने निर्भयता जगाई है॥३॥
गुलामी में पिसे थे खूब, हो हम हिन्द के बासी ।
मगर गान्धी ने दीवारी, गुलामी का गिराई है॥४॥
फंसाया था हमें फन्दों में, तगमे पद खिताबों ने ।
मगर गान्धी ने इन की शान, मिट्टी में मिलाई है ॥ ५ ॥
न बनन मेम्बर कुरसी न, चहिये कौंसिल की अब ।
मुबारक हो तुम्हीं को ये, यहाँ से अब विदाई है ॥ ६ ॥
गजब हैरान है हुक्काम, गान्धी की ये आन्धी से ।
हैं कहते यह बला कैसी, हमारे शिर पर आई है ॥ ७ ॥
उड़ा देगी ये आन्धी ज्यादती जुल्मों को भारत से ।
सुखी स्वाधीन होंगे हम, यही देता दिखाई है ॥ ८ ॥

* नशे वाजी से नाश *

(२३)

करेगी बिल्कुल तबाह हालत, शराबियो ये शराब तुमको ।
शराब पीना दो छोड़ मुतलिक़, किया है इसने खराब तुमको ॥१॥
कमाई अपने पसीने की तुम, क्यों व्यर्थ पानी में फेंकते हो ।
समझलो इसका खुदा के घरमें, पड़ेगा देना जबाब तुमको ॥२॥

तड़पते भूखे तुम्हारे बच्चे, न तन पै कपड़ा रहा है उनके ।
ख़रच ये रुपये उन्हींके हक में, करोगे होगा सवाब तुमको ॥३॥
शराब पीना मना है सब ही, धरम में इसको गुना कहा है ।
उठादो मिलकर शराब खोरी, नहीं तो होगा अजाब तुमको॥४॥
पड़े हो ग़फ़लत में पीके गाँजा, गंजेड़ियों को विचार देखो ।
हैं लूटी कितनी दौलत ये बूटी ने, क्या याद इसका हिसाब तुमको॥
किया है बे दम तुम्हें ये दम ने, दो छोड़ गाँजा का पीना अबभी।
दिया है इसने हे साधु सन्तो, गंजेड़ियों का ख़िताब तुमको॥५॥
पड़े रहोगे पिनक में कब तक, अफीमचियो तुम्हीं बताओ ।
किया है बेगोश्त इस पोस्त ने ही, रही दिनों दिन ये चाब तुमको॥७॥
दो छोड़ चन्डू चरस तम्बाखू, सिगरेट बीड़ी औ भंग को तुम ।
नशों ने बिल्कुल नसाया तुमको, किया है बेजां जनाब तुमको॥८॥

* भारत रमणियों में जागृत *

(२४)

जगो जननियों! देश जीवन जगाओ ।
करो देश उन्नति, अवन्नति भगाओ ॥ १ ॥
पगो प्रेम में द्वेष जड़ता अगाओ ।
हरो हीनता, धर्म चर्चा चलाओ ॥ २ ॥

× × × × ×

क्या देश माताओ सोती रहोगी ।
अधिकार अपने क्या खोती रहोगी ॥ ३ ॥
अविद्या में कब तक तुम रोती रहोगी ।
पतित और कब तक हा! होती रहोगी ॥ ४ ॥

× × × × ×

सुनो देवियो दुंदुभी बज चुकी है ।
समर साज साजनी सभी सज चुकी है ॥ ५ ॥

असहयोग की धूम भी मच चुकी है ।
अहिंसा की अन्तिम विजय हो चुकी है ॥ ६ ॥

× × × × ×

उठो नारियो कर नरों का बटाओ ।
भयंकर घटायें यहां से हटाओ ॥ ७ ॥
विमल "आर्य-आदर्श" जग को दिखाओ ।
क्या कर्त्तव्य है राष्ट्र का अब भी सिखाओ ॥ ८ ॥

× × × × ×

* हिन्दू मुसलमानों के मेल पर बधाई *

(२५)

मुसलमां हिन्दुओं का मेल से मिलना मुबारक हो ।
परस्पर प्रेम से दोनों का दिल खिलना मुबारक हो ॥ १
कयामत तक न टूटे अब, कभी यह प्रेम का बन्धन ।
मुहब्बत से विषैली फूट का, हिलना मुबारक हो ॥ २
है दोनों पुत्र भारत माँ के हम दिल और हमवतनी ।
फतह पाने को कौमी जंग में मिलना मुबारक हो ॥ ३ ॥
बहुत वर्षों से हा विछुड़े, हुए थे भाई हम दोनों ।
मगर अब साथ उठना बैठना चलना मुबारक हो ॥ ४ ॥
है दोनों की भलाई मुल्क भारत की भलाई में ।
इसी मत पर दुहुन का फूलना फलना मुबारक हो ॥ ५ ॥
थी हारिज गोकुशी दोनों दलों के दिल मिलाने में ।
मगर अब गो कुशी का मुल्क से टलना मुबारक हो ॥ ६ ॥
रहेंगे देश में दोनों सदा आज़ाद होकर ही ।
गुलामी ज़ोर ज़ुल्मों का यहाँ टलना मुबारक हो ॥ ७ ॥
न लेंगे चैन अब विनु मंजिले मक़शूद पर पहुंचे ।
दिलों में एकता के भाव का ढलना मुबारक हो ॥ ८ ॥

* विजय-मन्त्र *

(२६)

(१)

अहिंसा—

अहिंसा व्रत को जो अन्तिम समय तक धार लेंगे हम।
भयंकर पाशविक बल पर, तो बाजी मार लेंगे हम॥
है आशा देश को दुख दास्यता से तार लेंगे हम।
विपति वारिधि से बेड़ा मातृ का कर पार लेंगे हम॥ १॥

(२)

शान्ति—

असहयोगी सम्हल जाओ, न शान्ती भंग तुम से हो।
हों बदनाम ये जातीय, जीवन जंग तुम से हो॥
तुम्हारी वीरता को देख, दुनियाँ दंग तुम से हो।
अनयदौरात्म अत्याचार, वीरो तंग तुम से हो॥ २॥

(३)

स्वदेशी, चरखा, खादी—

स्वदेशी से है आबादी, विदेशी से है बरबादी।
तजो बू बास परदेशी, बनाओ निज चलन सादी॥
गिरावेगा किले जुल्मों के, चरखा तोप फौला दी।
समझलो खूब आज़ादी, दिलावेगी तुम्हें खादी॥ ३॥

(४)

अछूतोद्धार—

करो नफ़रत नहीं हरगिज़, कभी तुम इन अछूतों से।
डरोगे बन्धुवर कब तक, छुआ छूतों के भूतों से॥
मिलेगा बल विजय में, देश को इन देश दूतों से।
बढ़ाओ प्रेम तुम भारत, जननि के इन सपूतों से॥ ४॥

(५)

सिद्धान्त पर निर्भय डटे रहो—

सदा भड़काये जाओगे, नहीं हरगिज़ भड़कना तुम।
हिमालयवत अचल रहना, न तामस से तड़कना तुम ॥
न बन्दर घुड़कियों से डरना, कोई को घुड़कना तुम।
न दो तरफा हो बेपेंदी, के लोटा से लुढ़कना तुम ॥ ५ ॥

(६)

अन्याय पर मत झुको—

असहयोगी कभी अन्याय, के सन्मुख न झुकना तुम।
विषम काँटे बिछे हों मार्ग में, तो भी न रुकना तुम ॥
समर बीर बन बढ़ना, कहा कायर न लुकना तुम।
सहारा सत्य का ले काम, अपना करही

(७)

पशु बल पर आत्म बल की विजय—

है उनके साथ पशु बल, तो तुम्हारे साथ प्रभु बल है।
समझ लो आत्म बल के, सामने पशु शक्ति निष्फल है ॥
मिली स्वाधीनता समझो, जो तुम में ऐक्य अविचल है।
समस्या देश की उलझी, तो भारत वासियो हल है ॥ ७

(८)

स्वराज्य की विजय पताका—

रहे सिद्धान्त पर दृढ़ तो, सफलता साथ में होगी।
अमिट यश की विमल रोरी, तुम्हारे माथ में होगी ॥
तुम्हारी कीर्तिमय करणी, लिखी गुण गाथ में होगी।
पताका वर विजय की तब, तुम्हारे हाथ में होगी ॥ ८

एवमस्तु

———

* स्वतंत्रता *

(२७)

है स्वतंत्रता हम को प्यारी—
जन्म सिद्ध अधिकार हमारा, हम उसके अधिकारी।
उसे रखेंगे सदा सुरक्षित, खोकर सम्पत्ति सारी॥ १॥
है तूही सर्वस्वजन जीवन, सुखकारी दुख हारी।
तेरे सन्मुख निरस इन्द्र की, स्वर्गस्थली बिचारी॥ २॥
तेरी मूर्ति मनोहर जिसने, ऐकहु बार निहारी।
बस स्वतंत्रते आ जीवन वह, तेरा हुआ भिखारी॥ ३॥
है वह पुण्य प्रदेश पूज्यतम, धन्य वहां नर नारी।
तूने जहां निरन्तर निर्भय, है लीला विस्तारी॥ ४॥
जीवन जन्म सफल तुझ से ही, तेरी महिमा भारी।
निष्फल जीवन है तेरे बिनु, यही निति निरधारी॥ ५॥
जल चर थल चर पशु पक्षी, सब तेरे प्रेम पुजारी।
गाते तेरे गीत बताते, तू सम्पत्ति हमारी॥ ६॥
नहीं अधिकार किसी को, करदे हम से तुझ को न्यारी।
तुझ पर स्वत्व समान सभी का, है तू विश्व दुलारी॥ ७॥
अरी दास्यता अब टलने की करले तू तैय्यारी।
पा स्वतंत्रता तुझ को, फूले भारत की फुलवारी॥ ८॥

* श्रीराम राज्य का आगमन *

(२८)

आवेगा फिर यहाँ पर, वह राम राज्य प्यारा।
भारत बनेगा फिर भी, सारे जहाँ से न्यारा॥ १॥
कोई दुखी न होगा, सब ही सुखी रहेंगे।
भारत का भाग्य नभ में, चमकेगा फिर सितारा॥ २॥

दौरात्म्य ना रहेगा; समता का युग बहेगा ।
भारत में फिर बजेगा, सतन्याय का नकारा ॥ ३ ॥
इस धर्म प्राण भू में, पातक न अब रहेगा ।
प्रगटेगी फिर यहाँ पर , आदर्श धर्म धारा ॥ ४ ॥
सब ही स्वतंत्रत होंगे, परतंत्रता नशेगी ।
भारत बनेगा फिर भी, सर्वेश का दुलारा ॥ ५ ॥
समृद्धियां यहाँ फिर, विचरेंगी शान्ति सुख से ।
भारत बनेगा जग में स्वाधीनता का द्वारा ॥ ६ ॥
उन्नति के पट्ट खुलेंगे, सहसा जो बन्द अब हैं ।
निश्चित है पूर्ण होगा, उत्थान अब हमारा ॥ ७ ॥
आशामय आ रहा है, भारत भविष्य उज्ज्वल ।
देखो दिखा रहा है, वह क्लेश का किनारा ॥ ८ ॥

* मातृ बन्दना *

(२९)

जय मातृ भू, भय हारिणी, वैभव विजय विस्तारणी ।
भावी शुभाशा कारिणी, स्वाधीनता संचारणी ॥
जय नीति पथ निर्धारिणी, कल्मष अनीति निवारिणी ।
जय धर्मपथध्वज धारिणी, भारत जननि दुखहारिणी ॥

---

* शुभकामना *

(३०)

सर्व शक्ति दो शक्ति, देश उन्नति करने की।
धरने की सद्धर्म, दुराशा दुख हरने की ॥
भरने की भावोच्च, पतन तम से तरने की।
मातृ भूमि के मान हेतु सुख से मरने की ॥

× × × × × ×

अभय सुनादें देश में, ये " स्वराज्य-संगीत " को।
हों समर्थ हमशमन में, अत्याचार अनीत को ॥

शुभम्

समाप्त

वन्दे गोमातरम्

साहित्य सम्राट गोस्वामी तुलसी दास जी के स्मरण में प्रकाशित

श्रीतुलसी ग्रंथ माला तथा गौरक्षाग्रंथ माला की महत्त्वपूर्ण पुस्तकें

(ले० शोभाराम धेनुसेवक 'लखना दौन)

आज दस ग्यारह वर्ष से अपनी उत्तमता के कारण सारे भारत वर्ष में बड़े प्रेम से पढ़ी जा रही हैं। यदि आप भी उत्तम २ भाव पूर्ण पुस्तक पठन के प्रेमी हैं। तो ग्रंथ- माला द्वारा प्रकाशित पुस्तकें अवश्य पढ़े। पुस्तकें क्या हैं। अनुपम रत्न हैं। अबतक ग्रन्थमाला के करीब एक- सहस्त्र के स्थायी ग्राहक हो चुके हैं। आपभी ग्राहक बनकर लाभ उठावें तथा अपने मित्रों को ग्राहक बनावें।

—प्रकाशित पुस्तकें—

मानस- मंजूषा (संयुक्त शंकावली रामायण) महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है १॥) आर्य -आदर्श (तीनो भाग) प्रतिभा शालीखंड काव्य १।≶) भरत चरित्रामृत ।≶) गो- गुणावली ।) सनातन धर्म कीर्त्तन ।) कपिला क्रन्दन ≶) अवतार दर्शन ≶) अलौकिक माला मर्दन ≶) गौ रक्षापरमाषण -) गौरक्षा संदेश (बिना मूल्य) मुसलमानों में गौरक्षा का (बिनामूल्य) सुरेन्द्र सुरभी संबाद -)

(१)—आगामी वार छपने वाली पुस्तकें—

भारत पुष्पांजली ।≶) पद्यपीयूष ॥) पद्मलता ३) भूलमें शूल । स्वर्गीय सुमन ।) स्वराज्य सिद्धान्त ।) सूची पत्र, देखियेगा :

पताः—श्री तुलसीग्रंथमाला।
पो० लखना दौन
शिवनी (मध्यप्रदेश)

आर० एस० स्टीम प्रेस नौगवां फतेहगढ़ में छपा ।

मैनेजर— श्री तुलसी-ग्रन्थमाला
लखना दौन (सिवनी सी० पी०)

हिन्दी करीमा

अर्थात्

फारसी भाषा के उद्भट कवि शेख सादी की
फारसी करीमा का खड़ी बोली में
पद्यात्मक पंक्ति-प्रति-पंक्ति
अनुवाद।

मुज़फ़्फ़रपुर ज़िले के शिवहर मि० इ० स्कूल
के हेड मास्टर
श्री रामदास राय कृत।

"खड्गविलास" प्रेस—बांकीपुर।
बाबू चण्डीप्रसाद सिंह ने मुद्रित किया।
१९०७

प्रथम बार १०००] [दाम ―)

हिन्दी करीमा

अर्थात्

फारसी भाषा के उद्भट कवि शेख सादी की
फारसी करीमा का खड़ी बोली में
पद्यात्मक पंक्ति-प्रति-पंक्ति
अनुवाद ।

मुजफ़्फ़रपुर जिले के शिवहर मि० इ० स्कूल के
हेड मास्टर

श्री रामदास राय कृत ।
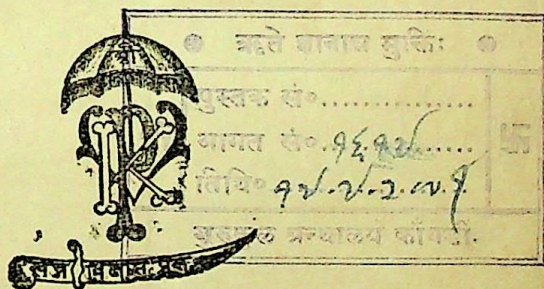
"खड्गविलास" प्रेस—बांकीपुर ।
चण्डीप्रसाद सिंह ने मुद्रित किया ।
१९०७

समर्पण।

श्रीशिव-सेवक शान्त सुशीला।
निर्मल साधु सन्त-गुण-शीला॥
पुण्यपुञ्ज सज्जन मतिधीरा।
भजनानन्द भक्ति-पथ वीरा॥
अस इनु सहित मान परसादा।
विद्यागुरु सुइवल-मरजादा॥
मिडिल पढ़ाया जिनने मुझ को।
ग्रन्थसमर्पण करता तिन को॥
सादीशेख करीमाकरता॥
भये भव्यकवि जग में जगता॥
उसे शेख अफजल हुसेन ने।
कहा, सुना रघुवीर कुमर ने॥
हुई तो उस की हिन्दी छाया!
गाया गीत दास ने गाया॥
तो भी गुरुवर! अपने जन को।
यह होती है वस्तु आप की॥
सो इस को अङ्गीकृत कीजे।

औ कुछ ऐसी आषिस दीजे ॥
हो जिस से इस का परचारा ।
जन समूह में भले प्रकारा ॥
तौ मैं अपना श्रम सफलाऊं ।
सफल मनोरथ अपना पाऊं ॥

श्रावण शु० १२ } ग्रन्थकार ।
सं० १९६३

अथ

हिन्दी करीमा ।

(१) करुणालय से करुणार्थ प्रार्थना ।

हो करुना करुनानिधि ! मुझ पर ।
मैं हूं आशा-पाश-वद्ध नर ॥
सुने कौन तुम बिना हमारी ।
तू छमता पामर-अघ भारी ॥
पाप-पंथ से मुझे बचादे ।
दुरित दुरा सत पंथ लखादे ॥

मुसलमानी मत प्रवर्त्तक मुहम्मद साहेब का नामोल्लेख ।

जब तक रहे जीभ-गति आनन ।
तब तक कहे "मुहम्मद"-गुनगन ॥
भगवत-प्रेमी, हरि-अनुचर वर ।
हो आसीन, उच्च, वह दिव पर ।

विजयी बाजि (१) "बुराक" सवारा।
नीला नभ-गृह लांघनहारा।

(३) ग्रन्थकर्त्ता की अपनी बातें।

वयस तुम्हारी चालिस बीती।
गई न मन ! शिशुता की रीती॥
ईर्षा, लालच में वय सारा।
गया; न छन भर धर्म विचारा॥
बय भरोस नहिं, यह है थिर नाहिं।
काल-कला से यह निर्भय नाहिं॥

(४) दयाशीलता की अपूर्व महिमा।

दया-पात्र मन जिस ने परसा।
दया-जगत में जगता दरसा॥
दया तुझे जग-जाहिर करती।
दाया तव परतीति पुराती॥

---

१ घोड़े का नाम जिस पर चढ़ कर मुह[illegible] साहेब जैसा कि मुसलमानी धर्म्मपुस्तकों में क[illegible] है नीले आकाश से हो कर स्वर्ग गये थे।

दया बिना जग में नहिं कारा।
दया बिना नहिं गर्म बजारा॥
दया सौख्य की पूंजी होवे।
तथा यही जीवनफल होवे॥
दाया से जग-जीव सुखी रख।
दया-दान से जग गुञ्जित रख॥
दया-दीढ़ सब समय रहा कर।
जीवितेश ही अहै दया कर॥

(५) दान शीलता का प्रबल प्रताप।

भाग्यवान करता है दाना।
क्योंकि दान से है कल्याना॥
दया दान से हो जग-जेता।
दया दान से जन-पद-नेता॥
दया काम है दिलवालों का।
दया काम गौरववालों का॥
दोष ताम्र को दान रसायन।
सब दरदों की दवा सभी छन॥

नहो दान से भरसक बाहर।
कि ले दान से सुकृत सुमन कर ॥

(६) कृपणता की भर्त्सना।

यदि नभ फिरे कृपण इच्छा पर।
हो यदि प्रभुता कृपण-दास वर ॥
होवे (१) क़ारूं की निधि कर में।
जदि जग होवे उस के बश में ॥
तदपि कृपण नाहिं जोग नाम के।
जदि जग लोग हाेंय चर उस के ॥
सूम-माल-असबाब न चहना।
चहिये नहीं नाम भी कहना ॥
सूम तपे यदि सरिता, बन में।
सरग न लहे संत के मत में ॥
धन-जुत-शक्ति कृपण यदि पावे।
दुखी दीन बन कान मलावे ॥

---

(१) यह बड़ा प्रसिद्ध धनकुबेर था सुनते हैं कि इसको चालीस घर तो ख़ज़ानों की कुञ्जियांही थीं।

दाता धन से फल हैं खाते।
रजत-स्वर्ण दुख कृपनी पाते॥

(७) नम्रशीलता की बड़ी बड़ाई।

मन यदि नम्र-शीलता धारे।
बनें जगत-जन तेरे प्यारे॥
नम्रशीलता से पद बढ़ता।
चंद चांदनी रबि से लहता॥
नम्र-शीलता मित्र-मूलधन।
यह करती दृढ़, उच्च, मित्रमन॥
नम्रशीलता नर को गौरव।
देती महत जनों को जस नव॥
नम्रशीलता नर है गहता।
इस के बिना न नर छवि लहता॥
नमृशीलता चातुर चहता।
फर-जुत तरु-सिर भूपर नवता॥
नमृशीलता पति सरसाती।
दिव में ऊंचा ठाँव दिलाती॥

स्वर्गद्वार की कुञ्जी यह है ।
गुरुता-गौरव-शोभा यह है ॥
जो सिर चाहे गरुवा बने ।
भल तर उस से बिनयी बनै ॥
ओ हो नम्रशीलतावाला ।
उस को फल देवे पद बाला ॥
विनय तुझे जग प्रीति मिलाती ।
तुझे प्राण सम पूज्य बनाती ॥
जग प्रति बिनय न तुझे शोक है ।
जो तूं खैंचे सिर असि सम है ॥
विनय श्रेष्ठ है उन्नत सिर की ॥
विनय बानि है साधु संत की ।

(८) गर्वशीलता की निकृष्टता ।

कभी गर्व नहि प्यारे करना ।
कि हो एक दिन सिरभर गिरना ।
करे मान मतिमान निरादर ।
घटे न यह ज्ञानी से सक भर ॥

हो निर्बुद्धि गर्व-अभ्यासी ।
हों नहिं इस का भिज्ञ उपासी ।
(१) शैतां का घर इस ने घाला ।
लज्जा के बन्दीगृह डाला ॥
खानि, गर्व की, जिस की जानो ।
मान पूर्ण सिर उस का मानो ॥
यह अभाग्य की पूंजी होता ।
पाप पुंज का मूल लखाता ॥
जो है जानता क्यों मद करता ।
करता पाप, पाप तू करता ॥

(९) विद्या की उत्कृष्टता ।

मनुज मान पाता विद्या से ।
नहिं धन दौलत, पाति, गुरुता से ॥
मोम सरिस विद्या हित घुलना ।
चाहिये; नहिं हरिस के समझ ना ॥

---

(१) कहते हैं कि शैतान घमण्ड करके ही ईश्वर का कोपभाजन बना और स्वर्गच्युत हुआ ।

बुद्धिमान विद्या की बाटा।
लगे; गरम नित इसकी हाटा॥
हुआ आदि से जो बड़ भागी।
लगन उसी को इस की लागी॥
तेरा कर्तव विद्योपार्जन।
हुआ; हुआ फिर उचित देशाटन॥
जा विद्या का दामन दृढ़ धर।
जो पहुंचावे तुझे सरग पर॥
सीखन विद्या-विन जदि चातुर।
विन विद्या रहना है बाउर॥
करम धरम विद्या ही सब है।
करना काम इसी बल भल है॥

(१०) मूर्ख संग-विवर्जन।

जदि मन! बुद्धिमान, मतिमाना।
संग न मूरख कर मनमाना॥
भागा, शर सम मूरख से रह।
छीर शर्करा सम न मिला रह॥

हो अजदहा दोस्त जदि प्यारा ।
है भल मूरख से जो यारा ॥
बुद्धिमान जानी--दुश्मन हो ।
भला मित्र से जो मूरख हो ॥
कोई कुमाति न मूरखता सम ।
नहीं अज्ञतर कृत उसके सम ॥
भल कृत उस से नहीं मंद ताजि ।
सुने न उस से बुरी बात ताजि ॥
मूरख अन्त नरकगामी हो ।
कभी न मूरख बड़भागी हो ॥
मूरख सिर सूली पर बेहतर ।
एवम दुर्विपाक में बेहतर ॥
करना संग न भल मुरखों का ।
उस को लाज लोक परलोका ॥

११ न्यायपरता की गुणावली ।

प्रभु ने पूरी मनसा तेरी ।
न्याय मध्य करता क्यों देरी ॥

जब नृप शोभा नितिन्याव से ।
करता न्याव न क्यों तन मन से ॥
तेरी नृपता चलती जावे ।
जदि नियावबल तेरे भावे ॥
न्यायी नौसेरवां हुआ है ।
जिस से उस का नाम बना है ॥
जनपद स्ववश नीति बल बसता ।
सकल कामनों का फल मिलता ॥
न्यावपंथ से विश्व बसावो ।
नीतिमान का मन हुलसावो ॥
नयबिन विस्व बसानेवाला ।
नहीं काम कुछ नय से बाला ॥
मिले तुझे क्या इस से बढ़कर ।
कि हो नाम तव न्यायी नृपवर ॥
अगर भाग से चहे नाम वर ।
रख अनीतिपट बंद विश्वपर ॥
परजों पर कम दया न दिखला ।

दाद दादख्वाहों की बर ला॥

१२ अत्याचार या अनीति की अवगुणावली।

अग अनिति-फल लहता कैसे।
हरा बाग पतझर से जैसे॥
तुम अनीति को फुरसत दो नहिं।
तव प्रताप रवि जो अथवे नहिं॥
आग जुल्म की जग में जिसने।
बारी; जग कलपाया उस ने॥
दुखिया एक आह जो दिलसे।
भरे; जले तो जल थल उस से।
निबल बिचारों पर कर बल ना॥
सोचो लघु समाधिथल अपना।
सीदित-जन-हित अहित कामना॥
न कर; जगत-चित-धुवां भूलना।
सता नहीं जग जीव मंद मति॥
जो नहिं दैव कुपे तुझ पर अति।
न कर अनीति अबल दुखियों पर।

उत्पाती को नरक ठीक कर ॥

१३ सन्तोषमहिमा।

मन जदि करे हाथ सन्तोषा।
मिले जगत सुख तुझे अनोखा ॥
रो ना यदि हो रीते हाथा।
धन है तुच्छ विज्ञ-जन साथा ॥
दारिद से नहिं लाज विज्ञ को।
दारिद् कामद (१) पैगम्बर को ॥
धन से धनशाली को सुख है।
किन्तु संत सुख में प्रति छन है ॥
हो नहिं धनी; नहीं पछतावा।
चहता कर ना उस से रावा ॥
है सन्तोष सदाही शुभकर।
करता इस को भाग्यवान नर ॥

---

(१) मुसलमानों में जब तब पैगम्बर यानी ईश्वर दूत हुआ करते हैं उन के साथ नई २ पुस्तकें उतरती हैं।

करे तोष-कीरति अभिअन्तर ।
जदि चहता हो नामी भूपर ॥

१४ अर्थ-लोलुपता की निन्दा ।

हे नर ! बांधा लालच जाला ॥
लालच-प्याला पिये बिहाला ॥
काट न उम्र मालहित सिगरी ।
न हो मोल मोती के ठिकरी ॥
जो जो पड़ा लोभ-बन्दी गृह ।
उस का जीवन लाभ गया वह ॥
माना कारूं का धन जावत ।
तथा तुझे है जगत नियामत ॥
पर बन्दी है अन्त छार का ।
बेचारों सा दीन चित्त का ॥
क्यों घुलता है धन चिन्ताकर ।
क्यों बहता श्रमभार यथा खर ॥
क्यों श्रम सहता सम्पति हेतू ।
जो सहसा ही नास लहेतू ॥

तुझ को मुद्राकृति ऐसी ।
गड़ी बनाई बिलखित ऐसी ॥
ऐसा मुद्रालोलुप हुआ ।
तो तू भावित चिन्तित हुआ ॥
ऐसा हुआ शिकार शिकारी ।
जो बिसरी अन्तिम सुधि सारी ॥
उस पामर को सुख नहिं मिलता ।
जो परलोक लोक हित नसता ॥

१५ विनय और पूजन-प्रताप ।

हो जिस का परताप गुलामा ।
सदा बिनय हो उस का कामा ॥
चहिये नहीं बिनय से फिरना ।
बिनती से सम्भव धन मिलना ॥
भाग्य प्राप्त विनती से होता ।
मन विनती से प्रज्वलित होता ॥
जादि कटि बांध विनय मन लावे ।
तो धन-द्वार खुला नित पावे ॥

इस से फेरै मन मनीष नहिं ।
इस से बढ़कर गुण कोई नहिं ॥
ले कर, पद, मुख धोय विनय से ।
जो न जले जमलोक ज्वाल से ॥
रख थिर विनय सत्य के पथपर ।
जो दौलत दृढ़ मिले हाथ पर ॥
विनय प्राण का है परकासा ।
जगतम आदित करता नासा ॥
स्रष्टा का हो पूजक तू रह ।
बैठा विनय नृपालय में रह ॥
जदि धारे परमेश्वर-पूजा ।
द्रव्य देश में नृपति न दूजा ॥
सिर निकास निर्दोष गलासे ।
दिव में बसते अनघ सदा से ॥
दिस, अनघ से, प्रान-दीप रख ।
भाग्य, भाग्यवानों का तू चख ॥
चले शास्त्र के जो अनुकूला ।

उस को व्यापे ना भव शूला ॥

१६ शैतान की प्रबलता ।

हुआ जो मन शैतान गुलामा ।
वह नित बंधुवा अघ के दामा ॥
हो जिस का अगुवा शैताना ।
कब हो उस का हरि-मग आना ॥
कभी न मन कर पाप-विचारा ।
द्रवे तो तुझ पर पालनहारा ॥
बुद्धिमान अघ से बच जाता ।
पानी शक्कर को पिघलाता ॥
भाग्यवान बच रहे दुरित से ।
क्योंकि किरनि रवि ढंपती घन से ॥
मनसा अपनी अशुभ पूर नाहिं ।
जो सहसा हो बन्दी तू नाहिं ॥
जादि अघ से मन फिरे न तेरा ।
तो हो नरक ठिकाना तेरा ॥
निज-जीवन-घर तू नाहिं घाले ।

अघ दुष्कर्म्मों के बस पाले ॥
रहे दूर दुष्कर्म्म दुरित से ।
तो न दूर हो स्वर्गबाग से ॥
दे कलाल जल अनल समाना।
किहो मस्त-मन मस्त महाना॥
बारुणि, अरुण, सुवर्णपात्र में ।
प्रिय-रदपट ज्यों प्रानदान में॥
अनल भला प्रेमी के रंग का।
स्वाद सु सुन्दर बिरही दिल का ॥
अमी सरिस वह मदिरा ला तू।
महक से उस के शोक छुटा तू ॥
सुखी जो पूरे प्रेमी साधा।
रहे प्रेम में उस के बांधा॥
सुखी मिल-सुख का अभिलाषी।
सुखी मित्र-वीथीका बासी॥
प्राणद प्रिय-रदपट ज्यों मदिरा।
प्यारे-मुख सम निर्मल मदिरा॥

मदिरा पीना भल पहुंचोंका।
होना मस्त भला पूरोंका॥

१७ सत्य-प्रताप।

रहे सत्य में तू थिर पद कर।
चलती छाप विना नहिं मोहर॥
सत्य पंथ से बाग न मोड़े।
तो तू मैत्री अरि से जोड़े॥
सत्य-खोरि से फेर न मनमुख।
किहो न लज्जित तू प्रिय-सन्मुख॥
सत्य-गली से पद न निकालो।
मित्रों में न अनीति चलालो।
हो दोस्तो में दोष जुदाई।
सत्य-रहित है प्रीति-बिदाई॥
है जिस की आदत तिरियों की।
सीखन बुरी बात तिरियों की।

१८ कृतज्ञता-प्रकाशन।

जिसका मन प्रभु-पेषक रहता।

वह आभार-जीभ न थम्हता ॥
हरि-कृतज्ञता-रहित न दम ले।
हरि कृतज्ञता उचित समझ ले ॥
धन्यवाद से सुख सम्पाति है।
इसी द्वार से तुझे श्रेय है ॥
गिने प्रलय तक प्रभु-उपकारा।
तो न जाय सहस्रांश पुकारा ॥
पर कृतज्ञता कथन ठीक है।
(१)मुसल्मान को गहना यह है ॥
प्रभु कृतज्ञता से न जीभ जो।
बांधे तो तू लहे चाह जो ॥

१९ सन्तोष की अमोघता।

जो सन्तोष सहायक तेरा।
होवे तो अटूट धन तेरा ॥

---

१ मुसलमान हो को क्या यह तो सभोपर फ़र्ज़ है। क्योंकि शेखसादी यह ग्रन्थ फारसी में मुसलमानों के लिये लिख रहे हैं इसी से इस में इस्लाम को ही सङ्केत किया है।

आचारज(१) का कृत सन्तोषा ।
खायन धर्मी इस से धोखा ॥
खोलेतोष कामना द्वारा ।
इसताली के सिवा न चारा ॥
तव मनसा पूरे सन्तोषा ।
खोले इसे तुम्हे मतिचोखा ॥
विनयद्वार की तालीतोखा ॥
विनय देश दर्सावे चोखा ।
सत्व प्रकार सन्तोष श्रेष्ठ है ॥
सकल श्रेष्ठताओं का फल है ॥
दे सन्तोष सफलता तुझको ।
करेद्वन्द दुख विरहित तुझको ॥
करे तोष तो तुझ को धर्मा ।
खरा दिखाना शैतां कर्मा ॥

२० सत्य की महिमा ।

मन यदि करे सत्यस्वीकारा ।

---

१ मूलमें पैगम्बर है जिसका हमने आचार्य रखा है

धन हो मित्र भाग हो यारा ॥
सच से फेरै सिरनहिं पण्डित।
सच से होता कीरति मण्डित ॥
सच बोले तो सुबह समाना ।
जड़ता-तम से मिले ठिकाना ॥
बोल कभी नहिं सांच छोड़कर ।
पदवी पाता (१) दहिन बाम पर ॥
सच से श्रेष्ठ काम नहिं जग में ।
कंटक है नहिं सत्यबाग में ॥

२२ झूठाई की असूमा ॥

होवे काम झूठ से जिसका।
मिले ज्ञान कब प्रलय अन्त का ॥
जिसकी जीभ झूठ की होती।
उस के दिलकी जले न जोती ॥
झूठ मनुज को लज्जित करता।
उस को है उत्पीड़ित करता ॥

(१) दहिन बाम को हम सांच झुठ ही समझते हैं।

पण्डित इस से लज्जित रहता।
जग नहिं कुछ झूठों को गिनता॥
मत कह कभी झूठ हे भ्राता।
झूठे का विश्वास न आता॥
नहिं असत्य सा ओछ काम है।
लोपित इस से श्रेष्ठ नाम है॥

२२ बड़े ईश्वर की ईश्वरता।

यह खिलान कंचनमय देखो।
उस की छत थिर खम्भ न पेखो॥
चंदवा देखो भ्रमतें नभ में॥
मोमवत्तियां प्रज्वलित उस में।
एक पहरु एक नृपति अखराडा।
चहता न्याव एक इक दराडा॥
एक सुखी है दुखिया एका।
एक सफल है निष्फल एका॥
एक छत्रधर इक कर दाता।
इक ऊंचे इक नीचे जाता॥

इक चटाइ इक राज पाट पर।
एक टाट पर इक पाटाम्बर ॥
इक निर्धन है एक धनी है।
इक हतास है इक कुशली है ॥
इक अनन्द मय एक कुशलना।
जीना एक एक को मरना ॥
इक निरोग है एक छीनतन।
एक जरठ औ एक जुवाजन ॥
एक पुण्य औ एक पाप में।
एक कुशल जुत एक जाल में ॥
इक उपकारी शुभ विश्वासी।
इक दुष्कर्म दुरीतिबिलासी ॥
इक सुशील इक दुष्ट निराला।
क्षमी एक इक लड़ने वाला ॥
इक सुखेन है दुख में इक है ॥
इक साधन में एक सिद्ध है।
इक महत्व-जग में जगता है।

इक जोखिम के दाम बंधा है ॥
इक आरामबाग में रहता ॥
इक सन्ताप शोक श्रम सहता ।
इक को धन सीमा से बाहर ।
इक को खर्च न बच्चों खातर ॥
एक पुहुपसम सुख से खिलता ।
दुख में इक का मन दुख पाता ॥
इक ने कमर लगन की बांधी ।
उमर एक ने अघ में साधी ॥
इक ने निसदिन पढ़ा [१] कुराना ।
इक मदिरा गृह मस्त लुकाना ॥
एक कील सम धर्म द्वार पर ।
इक ने दिया पैर अधरम पर ॥
विभवशील इक बुध बुधिशीला ।
एक अभागा अज्ञ लजीला ॥

---

(१) मुसल्मानी धर्मानुसार मुहम्मद साहिब को कुरान मिला जैसे मूसा को तवरेत, ईसा को इञ्जील।

धर्मशूर इक रन-पटु वीरा ।
कादर काहिल एक अधीरा ॥
इक मन लेखक धर्म धुरीना ।
एक चोर चित लेखण हीना ॥

२३ संसार की असारता ।

तव भरोस दुनिया का रखना ।
तुझे कहीं हो सहसा मरना ॥
अमित अनी की ना परतीती ।
मदद न मिले कहीं उस रीती ॥
न हैं राजपद बल के नाते ।
होंगे ये सब होते आते ॥
अभल नभल फल भल से पाता ।
बुरा बीज भल फल नहिं फलता ॥
भये अनूपम भूप अनेका ।
दिग्विजयी बलवन्त न एका ॥
अमित वीर अनि दलने वाले ।
नरसिंह खड्ग चलाने वाले ॥

इन्दुबदनियां सरो बराबर ।
मृदुल नारियां भानु मुखीवर ॥
बहु बिधुबदनी नई युबतियां ॥
बने छने दुलहे दुलहिनियां ॥
बहुत बिदित कृतकृत्य नहींकम ॥
बहुत पुहुपमुख बहुत सरो सम ॥
सबने आयु बसन को फारा ॥
मृतिका ग्रीवां में सिर डारा ॥
ऐसा नसा बयस खालियाना ॥
किना किसी ने दिया निसाना ॥
प्राण-हारि इस घर में लगना ॥
इस में दीखा सुखी एक ना ॥
यह सुख-सदन तुझे नहिं भावे ॥
जो उस का नभ दुख बरसावे ॥
नश्वर जग की सुत नहिं सत्ता
बयन विता इस में होमत्ता ॥
राजपाट की ओट न लाना ।

आयसु पर सहसा जी देना॥
मन अस्थिर जग पर नहिं देना।
यही सीख सादी की लेना॥

विक्रयार्थं पुस्तकें—

(१) शिक्षालता—हिन्दी पद्यात्मक (प्रायः खड़ी बोली में) अनुवाद of the pearls of English poetry

(२) लिङ्ग भ्रम संशोधन—इस के पढ़ने से लिङ्ग विषयक भ्रम निर्मूल हुआ जाता है— ।)

(३) वाक्यबोधव्याकरण—नाम से ही आशय प्रगट है ॥)

(४) शब्दार्थप्रकाश (डरिये नहीं गद्य में है) ड़)

(५) भारतदशा दर्पण— दर्शनीयग्रन्थ ॥)

(६) हिन्दी करीमा—करकंगन को आरसी क्या ॥)

(७) स्वर्गच्युति की पहली पोथी Milton's Paradise Lost Book In Hindi verses ।॥)

और भी ग्रन्थ प्रस्तुत हैं पर ये ऐसे ग्रन्थ हैं जिन की सब ने मुक्त कंठ से स्तुति की है। कोई लिखता है—"पुस्तक निःसन्देह उपयोगी है।" कोई कहता है "मैं देखता हूं आप बहुत अच्छा काम कर रहे हैं और आप ने इसके रचने से हिन्दी बोलनेवालों का महत उपकार किया है" कोई सुनाता है। "आप साहित्यानुरागीपुरुष हैं और अच्छी २ पोथियां लिखा करते हैं" आदि कहां तक लिखें। पाठक यह भी समझ रखेंगे कि यह विचार बड़े बड़े लोगों के हैं। Commission to trade रामदास राय हेडमास्टर शिवहर मि॰ इ॰ स्कूल—मुजफ्फ़र पुर।

भारत-दशा-दर्पण

श्रीरामदास राय कृत

भारत-अवनि सुहावनि, पावनि, मनभावनि, मुददायनि है।
आर्य्यजनों की धवलकीर्त्ति है, यह सब सुखसरसावनि है।
जगतपृष्ठ तल परमपुण्य थल, धर्मभाव दरसावनि है।
कर्म-भूमि है, मोक्ष-धाम है, देव-लोक तरसावनि है॥

BHARAT-DAṢA-DARPAN

BY

RAM DAS RAI.

PRINTED AT THE INDIAN PRESS,

ALLAHABAD:

1906.

भारत-दशा-दर्पण ।

[१]

श्री शारद शिव शिवा मनाता शेष गनेश मनाता हूँ ।
वासुदेव भगवान-देव का पाद पद्म नित ध्याता हूँ ॥
गुरु, भूसुर औ साध संत की महिमा मन में गाता हूँ ।
पुण्य-भूमि भारत का गौरव गाते सुख अनुभवता हूँ ॥

[२]

समय एक वह रहा कभी था जिस दिन भारत पूरा था ।
यह न किसीका था मुख लखता जग लखता मुख इसका था ॥
यह था पूरन वैभव-बल में बुधि विद्या में बाला था ।
शिल्प, बनिज व्यवसाय, कृषी में, एक एक से आला था ॥

[३]

राजा रामचन्द्र के ऐसे हरिश्चन्द्र से दानी वीर ।
प्रकटे, जिनने अचल धर्म हित सहे सकल संताप गँभीर ॥
वह भारत-सन्तान अवनि बिच राज-धर्म बिसराय रही ।
दुख-सागर में डूबी जाती अगनित गोते खाय रही ॥

[४]

जाता सबका एक दिवस नहिं जो जगता सो सोता है।
जगकर्त्ता का रचा नियम यह वह सब पर ही लगता है॥
नहीं एक सी दशा किसी की कभी कहीं यह रखता है।
सो भारत भी भाग-दोष से निगुड़ी निद्रा लेता है॥

[५]

क्या कोई भी नाम "फिनिशिया" लेता मुख से अपने है।
फिनिशियन थे कैसे हर-फन-मौला यह भी कहता है॥
कैसे उनने ईर्षा-वस हो अपना पोत डुबाया था।
कि जो न कोई जाने मग को जो मग उनने जाना था॥

[६]

जगा "रोम" था किसी काल में जहां "सिजर" वर बारह थे
"पम्पी", "सिसरो" आदि जहां पर एक एक से आगर थे
सो जिसने था योरप भर को किया इसाई, जीता था
वही काल-क्रम के वस अब पड़ सुप्त हुआ जो जगता था

[७]

आया ऐसा एक समय था जब "यूनान" की बाजी थी
"सुकरेटिस", "बुकरात", "अरस्तू", जब "प्लेटो" की चलती थी
सो "सोलन" औ "लाईकरगस" जहां "सिकन्दर" वैसे थे
अहो आज दिन देश उन्होंका वे नहिँ वैसे जैसे थे

[८]

"पारस" था तब पारसवाला "दारा" जहां "जरकसिस" थे ।
'रूम', 'साम', 'तातार', 'ट्राय', था 'मिश्र', 'चीन' औ 'वेबिल' थे ॥
सो अब सोते निर्भर निद्रा उनकी नींद न खुलती है ।
जैसे उस दिन उदय हुआ था तैसे इस दिन घटती है ॥

[९]

गये "पिकृस", "स्काट" कहां पर जिनने योरप लूटा था ।
कहां आज चंगेज, हलाकू हिन्द जिन्हों ने त्रासा था ॥
अहो आज तातारी दलबल, "हानीबल", है कहां गया ।
सबका बल विक्रम हा! साहस सहसा कैसे चला गया ॥

[१०]

वे जागें या जगें नहीं हो तुम तो भारत जगो अभी ।
तिनसे तेरी चाल निराली थी समता थी नहीं कभी ॥
तुम अपने पूरव प्रभाव को चेतो वह सब जाता है ।
आज आर्य्य-सन्तानों को ही हाय होश नहिं होता है ॥

[११]

होय होश क्यों कर्म-काण्ड बिन हुए, धर्म नहिं करते हैं ।
बिना धर्म के धर्म-भूमि पर वे कैसे टिक सकते हैं ॥
सो उनकी जो दशा चाहिये होनी सो ही होती है ।
बृटन-देश की रक्षा में भी तिनकी दशा न जगती है ॥

[१२]

हे भारत ! अब उठो चेत कर हुआ सवेरा कब का है।
कब तक यों सोवोगे पड़ कर देखो क्या क्या होता है॥
आज ईश ने 'ब्रिटन' देश से भले लगाया नाता है।
जिनने तुमको ज्ञान ध्यान पुनि बोध-पंथ दरसाया है॥

[१३]

यदि तुम कहो कि "जो जगता था सो तो अभी न जगता है।
तो मैं ही क्यों पहले जागूँ ? सोना ही भल लगता है"॥
तो भारत ! मैं तुझे बताता तू ही सबसे पहले ही।
जागा था, सो पहले जागो बिना बिलम्बे बहुते ही॥

[१४]

फिर विशेष थी बात तुम्हारी उन देशों से प्यारे हिन्द।
तुम सा जागा देश दुनी में कभी नहीं है लेता निन्द॥
उठ कर जितने देश गिरे हैं नहीं एक की ऐसी बात।
होती अब अनुभावित उनमें जैसी तुम में सो साच्छात॥

[१५]

तिस पर अब जापानराज ने दि है चीन की आँखें खोल।
"तुम भी जागोगे" कहते हैं बड़े विज्ञजन बातें तोल॥
प्यारी सारी वे आशाएँ टरती अब नहिँ टार चुके।
सो जागो जागो हे भारत ! अब नहिँ सोवो सोय चुके॥

[१६]

बनी वस्तु भारत की जाती अरब, मिश्र औ फ़ारस में।
और वहां के बसने वाले ले जाते थे यूरप में॥
अामेरिका तथा योरप की चटकीली चमकीली चीज।
आती कोटि २ रुपयें की देश न क्यों अब जावे छीज॥

[१७]

बनी देश की वस्तु न मिलती जो मिलती नहिं अल्पमोल।
और असुन्दर चटक मटक में जदपि टिकाऊ, स्वच्छ, अमोल॥
इसी हेतु से भारतवासी उनको कभी न करते खोज।
कभी जो लेते मन में कहते भूल हुई हमसे उस रोज॥

[१८]

सो स्वदेश की चीज़ें जब तक क्रय हमसे नहिँ होती हैं।
तो अब सोचें भारतवासी कहां ठिकाना पाती हैं॥
देश-जीवनोपाय कृषी है और वनिज-व्यवसाय प्रधान।
जो इन में से कोई चुकता तो द्वितीय करता कल्यान॥

[१९]

पर हे भारतवासी आखें खोलो, देखो होता क्या।
तुम केवल स्वीकार दासता करते छी! करते हा! क्या॥
कभी न जानो ब्रिटिश जाति ही होगी तुम पर सख़्त नराज।
जो तुम ब्रिटन देश की चीज़ें लेकर सजो न अपना साज॥

[२०]

ब्रिटिश जाति है भव्य सभ्य अति जहां न्याय नित चलता है।
जग कहता "हिकमत में चीना दानां मध्य फरंगा" है।
सो उसने ही सभ्य देश से दास-कर्म है दिया उठाय।
वह चहती है अपने हित का तुम नित करते रहो उपाय॥

[२१]

अँगरेज़ों के सब देशों में चलता है व्यापार अबाध्य।
इसी हेतु से जो चाहे सो कर सकता निज काज सुसाध्य॥
ऐसे राम-राज्य औसर में अब का चुकना ठीक नहीं।
जो अब चुकना कभी न उठना नहीं ठिकाना ठौर कहीं॥

[२२]

पर उठने के लिये वस्तु जो चहिये सो है प्राप्य कहां?
कहां धर्म है? जहां कृष्ण हों, होती निश्चय विजय जहां॥
राजा रन्तीदेव, युधिष्ठिर, शिवि, दधोचि, बलि बात कहां?
रहे जो ब्राह्मण वेद-पाठरत सो निज करते कर्म कहां?॥

[२३]

वैश्य बनिज व्यवसाय, व्यवस्थित, कृषक कर्म नहिं होता है।
करे अधीनी द्विज वर्गों की कहां शूद्र सो मिलता है॥
भारत जन जद्यपि हैं वासी एक देश के एकहि अङ्ग।
पर आनन-आज्ञा अनुसरते अपने अङ्ग न कैसा सङ्ग॥

[२४]

हां हैं शिक्षित लोग दिखाते वे कुछ करना चहते हैं।
पर झंझट झगड़ों में पड़ कर कुछ भी कर नहिं पाते हैं॥
नहीं एकता आपस ही में दुष्ट फूट से काम पड़ा।
अमलदारि अँगरेजी में भी भारत होता नहीं खड़ा॥

[२५]

वंगदेश से भारत-व्यापी धुनि है उठी स्वदेशी की।
जहां ऐक्य-मत लक्षित होता, होती आस भलाई की॥
पर उसका होता न भरोसा जब लग त्याग न अङ्गीकार।
होवे, भारतवासि जनों से एक वार नहिँ वारंवार॥

[२६]

जैसे सेनापति बिनु सेना कुछ भी काज न करती है।
करनधार से रहित सुनौका जैसे पार न लहती है॥
जैसे बिखरे वृच्छ बेलि को वायु मूलबिन करती है।
तैसे कोई जाति कहीं भी नेता बिना न टिकती है॥

[२७]

जो प्रभु तेरे हित हे भारत ! मच्छ, कच्छ, बाराह बने।
नरसिंह बने बने पुनि वामन, परसुराम, श्रीराम बने॥
श्री कृष्ण बन बने बैाध भी एवम् कलकी रूप बने।
सो रखते तेरी सुधि सब दिन सोच नहीं अनजान बने॥

[२८]

कौन वस्तु जो जग में होती सो तुम में नहिँ होती है ।
तिस पर कितनी वस्तु तुम्हीं में जो अन्यत्र नहिं होती है ॥
मानो प्रकृति संवारि सृष्टि सब बन ठन तुममें बैठी है ।
तिससे उसने सर्वदेश से सारी वस्तु समेटी है ॥

[२९]

देखो तेरी रक्षा के हित उत्तर ओर "हिमालय" है ।
"सुलेमान" औ "हाला" पर्वत "पश्चिम पर्वत" पश्चिम है ॥
"पूरब घाट" सुपूरब दिसि में "नागा", "खसिया", "गारो" है ।
ऐसी ही स्वाभाविक सीमा भारत की दिसि चारों है ॥

[३०]

इसी हेतु से भारतवासी भारत से नहिँ भगते थे ।
भगने की क्या बात पड़ी थी सपने सो नहिँ गुनते थे ॥
गुनते क्यों जीवन का सब सुख सम्पति सोभा सारी थी ।
जो सारी थी आती आगे उनकी अपनी प्यारी थी ॥

[३१]

जैसा है साहित्य तुम्हारा पूरन जैसा दर्शन है ।
जैसा वैद्यक, अर्थ-शास्त्र, संगीत, नीति औ ज्योतिष है ॥
सो कहने की बात नहीं है जग में जाहिर माहिर है ।
उस अपने गौरव को गुनना कर्तव तेरा भारत ! है ॥

[३२]

यहां सुवर्षा ऋतु पर होती ऋतु पर फरता तरवर है।
गर्मी जाड़ा समय समय पर होता कभी न अन्तर है॥
परम पुराने पराचीन के जद्पि नियम ही चलते हैं।
तिनमें पर कुछ दोष, हमारे, लाते जाते अंतर हैं॥

[३३]

सुनते हैं साहित्य देश का जब लग होता उच्च नहीं।
तब लग देश न उन्नत होता बसती अवनति अधम वहीं॥
हिन्दी, हिन्दुस्थान की भाषा, लिखी हुई देवाक्षर में।
हो सकती जातीय-सुभाषा, सहज भाँति से भारत में॥

[३४]

संसकीर्त है वैदिक भाषा जिससे सारी भाषाएं।
एशिया, योरप की निकसी हैं नहिँ इसमें शंकाएं॥
यह कहते योरोप-निवासी बुधि से अपनी निर्मल तोल।
उसी संस्कृत की दुहिता है दुखिनी हिन्दी प्राकृत बोल॥

[३५]

चेतो अपनी उस भाषा को उसमें करो सुग्रन्थ-प्रचार।
शिल्प-कला कौशल के, कृषि के, धर्म कर्म, आचार विचार।
तब साधारन जन जानेंगे अपने करने याेग्य करम।
उसे करेंगे मन-वच-क्रम-से पाय पाय परमोद परम॥

[३६]

तब कोई विंध्याचल ऐसे गुरु-अनुशासन मानेंगे।
और श्रवन हो अपने तन को माता-पितु-हित अर्पेंगे॥
सगर भूप से प्रजा-प्रेम पर निज सुत देश निकासेंगे।
गिनें कहां तक एक एक से बढ़ कर बात बनावेंगे॥

[३७]

जिस भारत में मरुत-नृपति ने नाग-सुण्ड-सम सर्पी-धार।
शतवत्सर तक आहुति डाली, अग्नि-देव ही हुए बीमार॥
उसी मरुत के, आज, देश में घी का पता न लगता है।
आज वहीं गोवंश बिचारा हुआ ध्वंश ही जाता है॥

[३८]

अभी सदी सोलहवीं में थे योरप-वासी सुनते बात।
ऋधि समृधि में पूरा भारत है पूरब में अति विख्यात॥
सो अमेरिका "कोलम्बसने" हिन्द-खोज में खोज लिया।
"वास्कोडीगामा" ने लंगर कालीकट में डाल दिया॥

[३९]

आज अभी भी योरपवासी कहते भारत पूरा है।
पर है बड़ी बात भारत की जो अब तक भी जीता है॥
भारत कृषि का देश ख्यात है किन्तु कृषक जो सारे हैं।
नहीं जानते कहां खड़े हैं दुख में दुखित बिचारे हैं॥

[४०]

जिस भारत में कहा राम ने "भरत! राज-पद तेरा है"।
कहा भरत ने "मेरे भ्राता! यह तो राज तुम्हारा है"॥
उसी देश में भ्रात भ्रात से मा-पितु से सुत लड़ते हैं।
होता क्या सो भी हैं लखते पर हिरदे के अन्धे हैं॥

[४१]

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र की अमित सभाएँ होती हैं।
भारत-धर्म-महा-मंडल औ धर्म-सभाएँ लगती हैं।
शिल्प-नुमायश खुलती जाती, कृषि की बातें चलती हैं।
तो भारत जानूं मैं तेरी आखें खुलती जाती हैं॥

[४२]

खुलें, खुलें नहिँ आखें तेरी पर आसा-दम भरना है।
क्योंकि, "दोष को लखना अपने अर्ध काम कर लेना है"॥
जो कोई करना चहे उसे तो सुगम पंथ मिल जाता है।
मालिक भी तो मदद उसी की करता किया जो चहता है॥

[४३]

धन्यवाद इँगलैंड देश को हम हैं जिसकी छाया में।
सुख से सभा बनाते जाते कहते हम "वह करता मैं"॥
नहीं बाहरी बैरी का डर रखते हम निज काया में।
भाग्य-दोष से अपने केवल हम दुख पाते माया में॥

[४४]

भारतवासी मुसलमान औ जैनी, बौध, इसाई भी।
हिन्द देश में सब हीं बसते सब हीं चहो भलाई भी ॥
चलो साथ हिन्दुओं के तुम तो तुम भी लाभ उठावोगे ।
नहिँ तो जैसे दुखी वे होंगे तुम भी दुख ही पावोगे ॥

[४५]

वैष्णव! शैव! शाक्त! हे गणपति! सूर्य्य मानने वाले! आप।
तथा और जो भाँति भाँति के मत का रखने वाले दाप ॥
एकमता अभि अन्तर सब में यदि अन्तर तो बाहर है ।
तजो द्वेष आपस के सारे करो वही जो कर्तव है ॥

अवध-आगरा-प्रान्त भुक्त है गंगवामदिसि गाज़ीपूर ।
उसी ज़िले का सुहवल-बासी रामदास शर्म्मा जा दूर ॥
मिथिला मध्य ग्राम शिवहर में भारत-दशा दिखाता है ।
उन इस शत षट, आठ फर्वरी, गुरु दिन, प्रेस पठाता है ॥

मेरी प्रकाशित और मुझसे प्राप्य पुस्तकें।

---

१ शिक्षालता—खड़ी बोली का काव्यमय अनूठा ग्रंथ ... ॥)

२ लिङ्ग-भ्रम-संशोधन—(प्रायः सहस्र शब्दों की शंकाओं का समाधान करता है) ... ... ।)

३ वाक्यबोध व्याकरण—अनूठा व्याकरण ... =)

४ शब्दार्थप्रकाश—(साहित्य ज्ञान की कुञ्जी है) ... ≡)

५ स्वर्गच्युति—प्रथम पर्व (व्रज बोली के छप्पय छन्दों में) ... ... ।≡)

६ स्वर्गच्युति—द्वितीय पर्व (खड़ी बोली के अपूर्व पद्यों में) ॥)

७ बालबोधिनी—बालोपयोगी ... ... -)।।।

८ बाल गीत—किंडर गार्टेन ... ...)।।।

९ भारत-दशा-दर्पण ... ...)

श्रीरामदास राय—हेड मास्टर

शिवहर मिडिलइङ्गलिश स्कूल

मुज़फ़्फ़रपुर

ट्रैक्ट नम्बर १

॥ ओ३म् ॥

स्वदेशी प्रचार माला

(आल्हा की ध्वनि में)

लेखक व प्रकाशक—

बालकृष्ण विद्यार्थी

मन्दिर आर्यसमाज, बिजनौर

मुद्रक—

"चैतन्य" प्रिन्टिङ्ग प्रेस,

बिजनौर (यू०पी०)

प्रचार स्वदेशी का करना आपका कर्त्तव्य है ।

धारण स्वदेशी को करो पुस्तक का ये मंतव्य है ॥

प्रथम बार १००० | सन् १९३० ई० | एक प्रति दो पैसे

❀ ओ३म् ❀

हरि ओ३म् का सुमिरन करके लीन्ही क़लम दवात उठाय ।
रक्षत शुरू करूँ आल्हा की सुनियो भाई कान लगाय ॥
आओ करें प्रचार स्वदेशी जिससे होवे बेड़ा पार ।
हिन्दू मुसलिम मिलकर करलो भारतमाता का उद्धार ॥
पाँच हज़ार बरस होगये हैं भारत सोया चादर तान ।
जब से फूट हुई आपस में पराधीन है हिन्दुस्तान ॥
पराधीनता में दुख पाये अब भी आँखें खुलती नाय ।
करो प्रचार स्वदेशी भाई गांधी जी यह रहे बताय ॥
पुत्र समान समझे प्रजा को राजा का ये है कर्तव्य ।
राज न करना चाहते हैं ये अपना सिद्ध करते मन्तव्य ॥
धन और धान्य भारत का लूटें कंगाली भारत होजाय ।
कौड़ी कौड़ी को ले जावें दमड़ी रहने पावे नाय ॥
ऐसी बात कौन है इनमें भारत का धन ये ले जाँय ।
कष्ट उठाकर अन्न कमावें फिर भी हम भूखे रह जाँय ॥
ध्यान लगा कर सुनलो भाई खेती करती है मैशीन ।
हल का काम वही है देती बैल बनी रहती मैशीन ॥
खेतमें चलता है जब इंजन धक धक २ करता जाय ।
बीस हलोंकी धरती को वह एक साथ जोत ले जाय ॥
घास फूँस की नहीं ज़रूरत वह तो केवल ईंधन खाय ।
अजब तरहका बना ये हल है खावे क्या और क्या देजाय॥
मेहनत कम करनी पड़ती है कम करना पड़ता है काम ।
थोड़ाही सा समय है लगता थोड़ा देना पड़ता है दाम ॥

थोड़े मज़दूरों की ज़रूरत थोड़े सहकारी रह जाँय ।
खाद अनोखा मिल जाता है गऊ माता को दें मरवाय ॥

जूते आदि खाल के बनते खून में कपड़े दें रंगवाय ।
गऊ खून में रंगे वस्त्र को भारत में देवें भिजवाय ॥

मांस को गोरों की पल्टन में फ़ौरन देते हैं भिजवाय ।
कमज़ोरों का मांस हैं खाते शेर को देख हाय करजाँय ॥

हड्डियाँ भी बेकार न जातीं चाकू के दस्ते बन जांय ।
गऊ माता की हड्डी लगती हाती दांत वही कहलाय ॥

बजरी बनती है हड्डी से बूरा हड्डी से बन जाय ।
गऊ माता के रक्षक बन कर बूरे में हड्डी खा जांय ॥

खाद हड्डियों का बनता है इससे खेती उत्तम होय ।
गऊ की हड्डियों को तज कर खाद न उत्तम कोई होय ॥

इनजन से खेती होती है गऊओं का न काम रह जाय ।
गऊ बैलों की हुई बेकारी उनको फिर देवें मरवाय ॥

बड़े बड़े अब बशर यहां के इनजन से खेती कर लेयं ।
भाव अगर दस सेर गेहूँ का पन्द्रह सेर बेच वे देयं ॥

नहीं मुक़ाबिल इनके आता दीन किसान बिचारा कोय ।
इनके ही कारण दीनों का कारोबार बन्द सब होय ॥

काम नहीं मज़दूरों का है सब कुछ कर लेती मैशीन ।
कुट्टी काटे खेत जोत ले खेती काट लेय मैशीन ॥

गन्ना पेलै रस को पकावै गुड़ तैयार करै मैशीन ।
कपड़ा बुनकर हमको देवै रेल सवारी है मैशीन ॥

खाना भी बनता मशीन से पानी भरती है मैशीन ।
जल, खुश्की के मोटर चलते पोत में चलती है मैशीन ॥
इसी प्रकार के और बहुत से काम को करती है मैशीन ।
मज़दूरों की हुई बेकारी जब तैयार हुई मैशीन ॥

विदेशी वस्तु से है हानि थोड़ी थोड़ी हूँ बतलाय ।
वस्त्र पहनते रङ्ग बिरङ्गे उनका हाल सुनो चितलाय ॥
रुई कपास जाय भारत से तीन सेर भाव में होय ।
कपड़ा जो तैयार करावें तिगुना एक रुपये में होय ॥

तीन सेर रुई रुपये की उसका कपड़ा हो तैयार ।
गऊ माता की चरबी ही से मांडी उसकी हो तैयार ॥
एक सेर रुई का कपड़ा आध सेर मांडी भी खाय ।
आध सेर मांडी के कारण एक गऊ का जीवन जाय ॥

एक साल में नव्वै लाख का कपड़ा भारत में आजाय ।
मांडी मांडी ही के कारण ५४ लाख जीव मर जांय ॥
गाय, सुअर शामिल है दोनों धिक् २ ऐ भारत संतान ।
हिन्दू मुसलिम नाम धरा है नाम डुबोया हिन्दुस्तान ॥

चिकना चमकीला कपड़ा जो बाहर से भारत में आय ।
चरबी की मांडी लगती है तुमको सच २ दिया बताय ॥
दूध मलाई रबड़ी खोया घी बिन गौओं के है नाय ।
कपड़े ही के कारण भाई ५४ लाख जीव मर जांय ॥

फिर घी दूध कहांसे पाओ ज़िन्दा रहना कठिन होजाय ।
जन्म हुए बच्चे की ख़ातिर दूध न मिलना है दुखदाय ॥

वहाँ के कपड़े की बिक्री है भारत का बिकता है नाय ।
इसीलिये भारत के जुलाहों का भी रोज़गार छिनजाय ॥
भारत के बेकार जुलाहे कपड़े के कारण है हाय ।
हानिकारक यह कपड़ा है ईश्वर करें नष्ट हो जाय ॥
पैसे की बनती सो सुइयाँ यहाँ तो मिलतीं केवल सात ।
एक रुपये के बदले में सोलह भारत से वे ले जात ॥
बड़ा बड़ा सामान विलायत में लोहे का हो तैयार ।
कम खर्ची के कारण भाई बेकार हुए लाखों लोहार ॥
होय गये बेकार बढ़ी भी बतलाओ खाने कहाँ जांय ।
मज़दूरी भी करना चाहें रही यहाँ मज़दूरी नाय ॥
कारोबार बन्द किये हमारे भारत में अब कुछ भी नाय ।
यतन करें क्या इसका भाई तुमको वह भी दूँ बतलाय ॥
बेकारी जब हुई यहाँ पर खाने तक को मिलता नाय ।
हर एक पेशेवर तज पेशा चोरी जारी करते जांय ॥
प्राचीन समय में यहाँ पर चोरी कभी होती थी नाय ।
एक समय थी हालत यहाँकी तुमको वह भी दूँ बतलाय ॥
चन्द्रगुप्त राजा था यहाँ का याद करे उसको संसार ।
फ़ारस श्याम चीन और लङ्का तिब्बत था उसका ग़मख़्वार
जब कोई जाता था बाहर को घर में ताले देता नाय ।
बाहर भीतर कहीं पड़ी हो, वस्तु कोई उठाता नाय ॥
धन और धान्यकी नहीं कमी थी इसीलिये उठती थी नाय
मगर आज लुटगया है भारत इसमें अब कुछ रक्खा नाय

चीनी यात्री मेगास्थनीज़ था प्रशंसा उसने की महान् ।
जो उसने लिखीं बड़ाई उनको जानै सभी जहान् ॥
स्त्री होती हैं पतिव्रता चोरी जारी होती है नाय ।
अत्याचार न था गौवों पर प्रजा को दुख था कोई नाय ॥

थे न मुक़दमेबाज़ यहाँ पर झगड़े आपस में थे नाय ।
मार काट होती न यहाँ पर धर्म कर्म के थे समुदाय ॥
धरम के ऊपर चली न तेगा ऐसा था यह भारतवर्ष ।
हाय मगर अफ़सोस आज है फूट का घर यह भारतवर्ष ॥

फूट का नाम नहीं था जहाँ पर भाई भाई लड़ते हाय ।
फिर बतलाओ कैसे नैया भारत की ये पार हो जाय ॥
बापके सन्मुख बेटा लड़ता मनमें शरमाता है नाय ।
होश में आओ अब भी देखो बिगड़ी फिर सुधरेगी नाय ॥

रामराज्य की प्रशंसा है पढ़ लो इतिहासों के बीच ।
उनकी ही सन्तान कहाते धर्म कर्म तज बन गये नीच ॥
भाई के भाई हैं दुश्मन मिलकर छुरियां रहे चलाय ।
थोड़े से लालच के कारण क़ैद में हमको लेयँ बुलाय ॥

कुरसी पर बैठे हैं कोई वनते हैं भारत के शाह ।
जुल्म न कोई वे करते हैं जो बनते भारत के शाह ॥
देशद्रोही जो बनते हैं भारत के दुश्मन हैं हाय ।
पंचम जार्ज नहीं कुछ कहते जो कहते हैं हैं निजभाय ॥

हुक्म न देता बादशाह है हुक्म चलाते भारत वीर ।
भारत के प्रेमी के जिगर में वार पार कर देते तीर ॥

लालच के वश में पड़कर क्यों भाई को देते मरवाय ।
भाई दुनियाँ भर में प्यारा भाई को बचवाओ भाय ॥
देश का कपड़ा जो हैं पहनते किसका लूट रहे हैं धाम ।
देशकी वस्तु काममें लावें फिर तुम्हरा क्या बिगड़े काम॥

गवर्नमेन्ट के जितने नौकर जलतें स्वदेशी के नाम ।
उनकी भी अब सुनो हक़ीकत कैसे कैसे करते काम ॥
पढ़ने को एक रोज़ गया मैं मनमें छाई खुशी महान् ।
तख़्ते पर यों लगा मैं लिखने जय जय प्यारे हिन्दुस्तान॥

गाढ़ा पहनो गाढ़ा पहनो जिससे होवे बेड़ा पार ।
भारत की डूबी जो नैया इससे ही होवेगी पार ॥
बाईकाट विदेशी का हो सर पर धारो गाँधी कैप ।
फ़िल्ट कैप का नाश होय अब नाम रहे एक गाँधी कैप ॥

इतना ही लिखने पाया था पंडित जी भी पहुँचे आय ।
तख़्ते पर की पढ़ी लिखाई पेटकी चिंता पहुंची आय ॥
मुझसे फिर यों कहने लागे तूने क्या यह लिखा है भाय ।
पता कलक्टर को लग जावे मेरी नौकरी दे छुड़वाय ॥

पुराने कपड़े हैं जो विदेशी उनको क्या हम देवें आग ।
कहा यों मैंने, नहीं है दुश्मन, फिर क्यों उसमें देवो आग॥
विनाशकाल विपरीत बुद्धि है चिन्ता नौकरी की है आज ।
फंसे लोभ में भारतवासी उन्नति करें ईश महाराज ॥

भारत के कोने कोने में हो स्वदेशी का प्रचार ।
डूबी जाती भारत नैया ईश्वर करदो इसको पार ॥

भारत की उन्नति का मारग गान्धी जी ने दिखलाया ।
काम अधूरा ही है लेकिन पूरा नहीं होने पाया ॥
सब मिल हाथ लगावें इसमें तो यह पूरा होवेगा ।
दीन हीन भारत की हालत को एक क्षण में खोवेगा ॥
मेल से रहो अगर तुम भाई कौन सतावे तुम को आय ।
लेकिन कर्मक्षेत्र में भाई आती रहती है ही बलाय ॥
उनसे घबरा कर गर भाई पीछे ही को जाओ भाग ।
तो बेशक उन्नति भारत की का बुझ जावेगा ये चिराग़ ॥
अङ्गरेज़ों का बुरा न चाहो उनको गाली दो तुम नाय ।
लेकिन उन्नति अपनी चाहो तुम से कहता यही सुभाय ॥
करो प्रचार स्वदेशी ही का झगड़ा करना उचित है नाय ।
सिर्फ़ स्वदेशी ही वस्तु से मन इच्छा पूरण हो जाय ॥
अपना अगर भला तुम चाहो करो दूसरों का उपकार ।
बारबार कहना पड़ता है करो स्वदेशी का प्रचार ॥
दीन दुखी डूबे भारत की नैय्या ईश्वर करदे पार ।
गान्धी जी का कहना मानो करो स्वदेशी का प्रचार ॥
ग़लती माफ़ करो अब मेरी करो स्वदेशी का प्रचार ।
जय हो महात्मागान्धी तुमको भूलेगा न सकल संसार ॥
नहीं विषय कोई मिलता है सिर्फ़ स्वदेशी का है नाम ।
लेखक नहीं न चतुर प्रवीण बालकृष्ण मेरा है नाम ॥

॥ ओ३म् शांतिश्शांतिश्शांतिः ॥

॥ इति ॥

युग-धर्म्म

आशा में जीवन, मरण निराशा में है ;
उत्थान मनुज का बस अभिलाषा में है ।

—किङ्कर

युग-धर्म्म

[महाभारत का एक अमर आख्यान]

लेखक—

श्री हरनारायण शर्म्मा 'किङ्कर'

हिन्दी-प्रभाकर

प्रकाशक—

कविता-कुटीर,

अलवर (राजपूताना)

प्रथम संस्करण] १९३८ [मूल्य चार आना

प्रकाशक—
श्रीमती उमा किङ्कर,
कविता-कुटीर,
जती की बगीची,
अलवर (राजपूताना)

卐

मुद्रक—
श्रीरामकिशोर गुप्त,
साहित्य प्रेस,
चिरगाँव (झाँसी)

परिचय

आज पाठक ! यह नई किताब,
आप के कर-कमलों में भेंट।
इसी में है जीवन का गीत;
इसी में मरने का सन्देश—
—ठाठ वह रजपूती का ठेठ॥

महाभारत का अमराख्यान;
यदपि इस गाथा का आधार।
न जाने फिर भी अब तक क्यों न;
आसका है प्रकाश में भली—
—भाँति यह अमित ज्ञान-भण्डार ?

कहानी वही विश्व - विख्यात,
किस तरह देने से इंकार।
किया, दुर्योधन ने भू - भाग;
सुई की नोंक बराबर, बिना—
—बजाए जी भर कर तलवार॥

चले लेकर रण का सन्देश,
कृष्ण जब पाण्डव-गण के पास।
कहा कुन्ती ने उनको—"वत्स!
सुना देना ले मेरा नाम—
—पुराना विदुला का इतिहास॥

और कह देना पाँचों वीर,
जूझ जाना रण - आँगन बीच।
जियोगे तो भोगोगे भूमि;
मरोगे तो पाओगे स्वर्ग—
—धरा को उष्ण रक्त से सींच।"

अगर फिर एक बार इस अमर,
कीर्ति गाथा का गौरव - गान।
छिड़े चौपालों में यह, गूँज—
उठे, खेतों खलिहानों बीच—
—जगमगाये फिर स्वर्ण-विहान ॥

दीपमालिका, १९९४
अलवर (राजपूताना)
—लक्ष्मणस्वरूप त्रिपाठी

अप्यहेरारुजन् दंष्ट्रां मा श्वेव निधनं व्रज ।
अपि वा संशयं प्राप्य जीवितेऽपि पराक्रमेः ॥

अलातं तिन्दुकस्येव मुहूर्त्तमपि हि ज्वल ।
मा तुषाग्निरिवानर्चिर्धूमायस्व जिजीविषुः ॥

संतोषो वै श्रियं हन्ति तथाऽनुक्रोश एव च ।
अनुत्थानभये चोभे निरीहो नाश्नुते महत् ॥

उत्थातव्यं जागृतव्यं योक्तव्यं भूतिकर्मसु ।
भविष्यतीत्येव मनः कृत्वा सततमव्यथैः ॥

(महाभारत, उद्योग-पर्व, अ० १३३,१३५)

श्रीरामः

युग-धर्म्म

[कथानक]

[सौवीर देश का सञ्जय नामक राजपुत्र जब सिन्धुराज से परास्त होकर हतोत्साह होगया और महलों में छिप बैठा तो राजमाता वीरा - विदुला से उसकी यह कायरतापूर्ण दशा न देखी गई । उसने सञ्जय को पुनः राज्यप्राप्ति के लिए प्रोत्साहित कर क्षात्र-धर्म्म से दीक्षित किया और भर्त्सनापूर्वक इस प्रकार उपदेश करने लगी]

विदुला—

उपजा इस कुल में क्लीव कुपूत कहाँ से,
है जन्म न तेरा वीर पिता से माँ से।
पुरुषार्थहीन तू पुरुष कापुरुष जैसा,
है जब हताश, कल्याण भला फिर कैसा ?

युग-धर्म्म

निर्भय हो करदे दूर बुरी आशङ्का,
अरि-दर्प दलन कर बजा विजय का डङ्का।

छोटा न समझ तू कभी आप को मन में,
मत हो प्रसन्न कुछ ही पाकर जीवन में।
क्यों पड़ा पराजित होकर कायर घर में,
फैली तेरी अपकीर्त्ति ज़माने भर में।
हँसते हैं रिपुगण बन्धु सभी रोते हैं,
सीधे दिन अपने यों उलटे होते हैं।

भरती कुछ जल से छोटी सरिता जैसे,
सन्तुष्ट हुआ तू पाकर थोड़ा वैसे।
मरजा विषधर के दाँत खींचता मरजा,
करजा कुछ जग में जीवन जागृति भरजा।

सम्मुख आएँ बस सङ्कट जैसे जैसे,
तू दिखा पराक्रम अपना तैसे वैसे।

रे, खोज शत्रु के छिद्र प्रथम तू छल से ;
फिर टूट बाज़ सा अवसर पाकर बल से।

कुछ मरा वज्र से तू न किसी ने मारा,
क्यों पड़ा मृतक की भाँति भला फिर हारा ?
आशा में जीवन मरण निराशा में है,
उत्थान मनुज का बस अभिलाषा में है।

तिन्दुक लकड़ी सा तेज प्रकट कर क्षण में,
चाहे तू होजा भस्म आज इस रण में।
भुस की आगी सा तेजरहित हो जीना,
मैं सह न सकूँगी होकर खिन्ना दीना।

गाएँ गुण जिसके अरिगण समराङ्गण में,
है जीवन उसका सचमुच छिपा मरण में।
जीते या हारे साहस कभी न छोड़े,
है वीर वही मुँह जो न युद्ध से मोड़े।

युग-धर्म्म

कर यत्न सफलता सम्भव है मिल जाए,
यह मुकुलित तेरा भाग्यकुसुम खिल जाए।
यों क्षात्र-धर्म को छोड़ जगत में जीना,
है घूँट खून की बस जीवन भर पीना।
खो चुका धर्म्म के साथ कर्म्म सब अपने,
अब देख रहा है व्यर्थ विजय के सपने।

जब टले न विपदा अपनी अपने टाले,
ले साथ शत्रु को मृत्यु - बदन में डाले।
कर्त्तव्य चाहिए यही वीर का होना,
यह नहीं कि तज कर धैर्य्य, दैव को रोना।
उद्योग छोड़ता नहीं थके भी घोड़ा,
तू भी दिखला बल आज बहुत या थोड़ा।
तेरा अभाव जग में न किसी को कसके,
तो बोझ बढ़ाया वसुन्धरा पर बसके।

जिसका न जगत में गौरव मान कहीं है,
वह निज माता का मल है, पुत्र नहीं है।
धन-बल-विवेक में औरों से बढ़कर है,
बस, वही विश्व में कहला सकता नर है।
ओ, शान्ति दया के अन्ध अनन्य पुजारी!
राजा होकर तू बनता आज भिखारी?

हँसते हों जिसको हीन देख रिपु मन में,
उससे न स्वजन सुख पाते कभी भवन में।
रख याद शीघ्र ही तेरे कायरपन से,
वञ्चित होंगे हम राज्य-विभव, धन-जन से।
जीविका - हीन हो निर्धन विवश मरेंगे,
रे, जीवन-लोभी! तब क्या धैर्य्य धरेंगे?

क्यों हुआ हाय यों मुझ से वाम विधाता?
जो करदी ऐसे कुल - कलङ्क की माता।

उत्साह - रोष - बलहीन कुपुत्र अनारी,
हे ईश ! न कोई जने कोख से नारी।

नैराश्य-धूम से न घिर प्रकट कर बल को,
रोषाग्नि-दग्ध कर सुत ! अरि-दल-दलदल को।
सन्धान धनुष को, अपने तीखे शर को,
चढ़ एक बार रिपु-मस्तक पर क्षण भर को।

है पुरुष वही जो क्रोधी, क्षमा-रहित हो,
जिसकी गति मति या नीति कूट, अविदित हो।
भय, निरभिलाष, सन्तोष, दया, सुख सारे,
होगए पतन के कारण आज हमारे।
अब मुक्त दीनता-जन्य अघों से हो ले,
उठ, कुल-कलङ्क कालिमा आज तू धो ले।

दिन बीते जिनके नारी-सदृश घरों में,
हो गणना उनकी कैसे बता नरों में ?

जो महामना हैं प्रकृत - शूर शासक हैं,
करते परार्थ श्रम, अनलस और अथक हैं।
दुर्दिन-वश वे यदि गत-वैभव हो जाएँ,
तो भी अमात्य या प्रजा सदा सुख पाएँ।
गिर कर प्रचण्ड पावक सा तू रिपु-दल पर,
जा युद्ध-क्षेत्र में क्षात्र-धर्म्म पालन कर।

सञ्जय—

युद्धार्थ मुझे उत्साहित तो करती हो,
मेरी नस नस में क्षात्र - तेज भरती हो।
मारा जाए पर यदि प्रिय पुत्र तुम्हारा,
किस काम आयगा राज्य-भोग-सुख सारा?

विदुला—

इस में इतनी ही इच्छा है बस मेरी,
हो तुझे प्राप्त, गत गौरव - गरिमा तेरी।

तेरे रिपुगण की गति अब दीनोचित हो,
आत्मीय जनों युत तेरा समुचित हित हो।
निर्बल का बल बन तू निर्धन का धन हो,
जग के जीवों का मेघ - सदृश जीवन हो।

कुसमय में छोड़ा अब यदि पौरुष अपना,
तो सहज नहीं फिर तेरा कभी पनपना।
जो यथाशक्ति निज तेज नहीं दिखलाता,
वह चोर-सदृश जगतीतल में कहलाता।
होते हैं हितकर वचन विफल यह कैसे,
उत्तम औषधि भी बस मुमूर्षु पर जैसे।

है सिन्धुराज का साथी कौन हृदय से ?
जो कुछ हैं तो वे मिले हुए हैं भय से।
पौरुष से अब यदि तू उसको जा घेरे,
मिलकर होंगे वे सभी सहायक तेरे।

तू उन्हें मिलाकर ले आश्रय बस वन का,
रह सदा देखता अवसर शत्रु-निधन का।
क्या सिन्धुराज को समझा अजरामर है?
सञ्जय! वह भी तो तेरे जैसा नर है।

कर सार्थक अपना नाम शत्रु के चढ़ शिर,
मत सदा बना रह सञ्जय! ऐसा अस्थिर।
"तू गले लगाकर एक बार विपदा को,
होगा महान् यशशाली वत्स! सदा को।"
यह कहा द्विजों ने था तेरे बचपन में,
कर याद उसे मैं होती हर्षित मन में।

होगी अब तेरी विजय मुझे निश्चय है,
फिर तुझे व्यर्थ क्यों अपने पर संशय है?
हठ करके तुझ से इसी लिए कहती हूँ,
हूँ आशावादी रही और रहती हूँ।

उठ यही समझ कर तेरी जय निश्चित है,
हित अन्य जनों का उसमें अरे! निहित है।

"हो विजय पराजय कुछ भी, युद्ध करूँगा,
मारूँगा रिपु को अथवा स्वयं मरूँगा।"
ऐसा कर दृढ़ संकल्प समर में जा तू,
बिन वरे विजय-श्री घर मत जीता आ तू।

दुरवस्था क्या हो और किसी भी जन की?
चिन्ता उठते ही नित्य प्रति भोजन की।
पति और पुत्र वध से दुख यह बढ़कर है,
दारिद्र्य, मृत्यु का ही तो नामान्तर है।

मैं उच्च वंश में जन्मी, खेली, ब्याही,
की वहाँ यहाँ मैंने अपनी मनचाही।
दिन मेरे सुख के और विभव की रातें,
वह गुण गौरव की गर्वभरी सी बातें।

कुछ छिपी नहीं है तुझसे कौन कहेगा,
तू जान बूझ कर कब तक मौन रहेगा ?

जब अर्द्धनग्न, उन्मना, दुःखिता, दीना,
वेदना-विवर्द्धित, विवसन, वित्त-विहीना।
देखेगा अपनी पत्नी को या मुझको,
क्या भला लगेगा तब यह जीवन तुझको ?

हैं सेवक, ऋत्विक, गुरु जो आज हमारे,
छोड़ेंगे निर्धन समझ हमें वे सारे।
संभव न उन्हें फिर होगा कभी जुटाना,
ऐसे जीने से अच्छा है मर जाना।

थे वीर-प्रशंसित कृत्य श्लाघ्य जो तेरे,
वे जुड़ा सके थे टूटे उर को मेरे।
देखूँ न उन्हें फिर तो मर ही जाऊँगी,
मर कर भी मैं पर शान्ति नहीं पाऊँगी।

माँगें कुछ ब्राह्मण जो कि दुखी हों दुख से,
तो 'नहीं' कहूँगी मैं उन से किस मुख से ?

हम थे लोगों के कभी अटूट सहारे,
कितने हैं शोभित, कीर्त्ति - स्तम्भ हमारे।
पर, हाय ! आज हैं निरवलम्ब बेचारे,
वेदना-व्यथित, हतभाग्य दिनों के मारे।

बरसों तक हमने कठिन साधना साधी,
पर बने आज हैं ज्यों के त्यों अपराधी।
हम डूब रहे हैं आज विपद सागर में,
तू एक नाव है वह भी किन्तु भँवर में॥

यह मरघट सा घर तुझ से ही सुरवन है,
निर्जीव जनों का तू बस जीवन - धन है।
सब छोड़ा अब तक जीवन-मोह न छोड़ा,
तोड़े सब बन्धन पर न शत्रु-शिर तोड़ा।

यों लगी रही जो दैहिक माया - ममता,
तो बाधक होंगी और विशेष विषमता।
चिन्तित-चित रहना, क्लीव-वृत्ति अपनाना,
इस महापाप से उचित, शीघ्र मर जाना।

हैं एक शत्रु को मार वीर यश पाते,
कर निधन वृत्र का इन्द्र महेन्द्र कहाते।
शस्त्रास्त्रसुसज्जित शत्रु-सैन्य को सत्वर,
विचलित कर करता वीर, घोष प्रलयंकर।
आतङ्क तभी है उसका बस छाजाता,
भय से शङ्कित हो रिपु-दल शीश झुकाता।

कायर वीरों की सुख - समृद्धि के साधन,
बन कर करते हैं बस उनका आराधन।
हो राज्य नष्ट या प्राणों पर सङ्कट हो,
पड़ जाय हाथ रिपु चाहे प्रबल विकट हो।

वध किए बिना उसको न कभी छोड़ेंगे,
उत्तम जन उसका शिर अवश्य तोड़ेंगे।

अमृतोपम अथवा स्वर्ग-द्वार सी सुखकर,
तेरे कारण ही रुकी राज्यश्री कायर!
शोकाकुल परिजन, हर्षित शत्रु जनों से,
तू घिरा पड़ा है कब से हा! कितनों से।
अब इस से अधिक न देखूँ पतनावस्था,
हो सावधान, कर ऐसी अरे, व्यवस्था।

सौवीर-सुकन्याएँ गाएँ गुण-गीता,
समझूँगी मेरा हुआ तभी मनचीता।
हो सिन्धु-देश की कन्याओं के वश में,
कालिमा लगाना कभी न कुल के यश में।

यौवन-विद्या-सम्पन्न यशस्वी जन का,
होना शिकार रिपु के कठोर शासन का।

वशवर्त्ती होकर अरि-इङ्गित पर चलना,
है एक तरह मरने के हेतु मचलना।

यदि कभी किसी का चाटुकार अनुगामी,
सञ्जय! तुझ को सेवक, तव रिपु को स्वामी।
देखूँगी उस क्षण कैसे शान्त रहूँगी?
जो सही न अब तक कैसे आज सहूँगी।

इस कुल में रिपु के पीछे चलनेवाला,
था हुआ नहीं, क्या अब है होनेवाला?
रिपु का अनुचर बन, जीना क्या जीना है?
ऐसा जीना, मरना; मरना, जीना है।

उस क्षात्रधर्म्म का मर्म्म जानती हूँ मैं,
सब नये पुराने रूप मानती हूँ मैं।
जिसका विधान भी विधि ने स्वयं किया है,
कुछ जान रही थी कुछ अब जान लिया है।

है सार यही बस उसका सञ्जय ! सुन ले,
तू सोच समझ ले बात काम की चुन ले।
जो भी क्षत्रिय है क्षात्र-धर्म्म का ज्ञाता,
भय, लोभ, मोह से कभी न शीश झुकाता।

पुरुषत्त्व इसी में है पुरुषार्थ न छोड़े,
हों, न हों, सहायक बहुत रहें या थोड़े।
वह मत्त करी सा निर्भय विचरे जग में,
द्विज और धर्म्म से नमे, न्याय के मग में।
जो इतर वर्ण हैं उन्हें रखे नियमन में,
कटिबद्ध रहे दुर्जन के सदा दमन में।

सञ्जय—

यह क्षात्र-धर्म्म है कितना निठुर विधाता !
रण भेज रही, बन माता आज बिमाता।
क्या ढला लोह का सचमुच हृदय तुम्हारा,
लगता न तुम्हें जो सुत इकलौता प्यारा ?

विदुला—

यदि मैं न कहूँ कुछ देख अयश यह तेरा,
तो है न ठीक यह कार्य्य प्रीति का मेरा।
सामर्थ्यहीन, निःसार, अहेतुक ऐसा,
बस होता है वह मोह खरी का जैसा।
इसलिए मूर्ख-जन-सेवित, बुध-जन-निन्दित,
अब छोड़ मार्ग यह, स्वयं समझ हित अनहित।

है घिरी प्रजा तो गाढ़ अविद्या-तम से,
तू प्रेम चाहता, मुझ सी माँ निर्मम से।
धर्म्मार्थ गुणों से युक्त पुत्र पर माता,
करती है, वह ही प्रेम यथार्थ कहाता।

जो विद्या-विनय-विहीन तनय को अपना,
समझा करती हैं प्राण उन्हें सुख, सपना।
जो पुरुषोचित-कर्त्तव्य-विमुख हो भय से,
करता है वर्जित, निन्दित कार्य्य हृदय से।

वह पुरुषाधम दोनों लोकों में सञ्जय !
पाता है अतिशय क्लेश, दीन हो निश्चय ।

इस जग में क्षत्रिय-सृष्टि हुई इस कारण,
समराङ्गण हो बस धाम, काम केवल रण ।
फिर विजय मिले या मिले मृत्यु भयकारी,
दोनों विधि होता इन्द्रलोक अधिकारी ।

यदि है न आत्म-विश्वास, धैर्य्य, साहस अति,
तो कहाँ सफलता सम्भव है फिर सम्प्रति ?
रिपु-वश कर क्षत्रिय सुख पाता है जैसा,
पाता न शत्रु-गृह और स्वर्ग में तैसा ।
रिपुओं से बारम्बार पराजित होकर,
क्रोधानल से संतप्त मनस्वी वह नर ।
निज शत्रु-दमन करता अथवा मर जाता,
मन में न कभी वह शान्ति अन्यथा पाता ।

सञ्जय—

अनुचित कठोर उपदेश यदपि है हितकर,
चुप रहो, करो अब करुणा माँ! प्रिय सुत पर।
यदि मैं ही मारा गया कदाचित् रण में,
क्या तुम्हें सौख्य फिर वसुधा में, भूषण में?

विदुला—

तू ने जो समझा, कहा सभी समुचित है,
तेरे हितार्थ ही चित मेरा चिन्तित है।
विध्वंस कराकर सिन्धु-देश का तुझसे,
होगा यथार्थ सत्कार समादर मुझसे।
मेरा यह कथित विचार न कुछ कल्पित है,
इस बार समर में सञ्जय! जय निश्चित है।
जा इन्द्र-वज्र सा टूट, शत्रु के दल में,
जिससे कि कीर्त्ति-ध्वज फहरें भू-मण्डल में।

सञ्जय—

गत हुआ राज्य, धन, विभव, मान गौरव है,
फिर भला हमारी जय कैसे सम्भव है?
यह दशा देख कर दारुण दुखद पड़ा हूँ,
अन्यथा मनुज हूँ, मैं भी हठी बड़ा हूँ।
बन पड़े वही सब करने को तत्पर हूँ,
पर विवश दैवगति से न हाय! बढ़कर हूँ।
अब भी उपाय यदि तुम्हें जँचे बतलाओ,
जो कहो, करूँ वह, कहो मार्ग दिखलाओ।

विदुला—

पहिली असफलताओं से तुच्छ न माने,
उनसे अपने को ऊपर ही बस जाने।
फल वही सफलता के मीठे चखता है,
सर्वदा काल-गति को वश में रखता है।

सम्पत्ति, सफलता खोकर मिल जाती है,
आकर हाथों से पुनः निकल जाती है।
आवेश-जनित, अज्ञता-विवश हो झट से—
कर देना कार्य्यारम्भ, तनिक झञ्झट से—
फिर उसे छोड़ना, यह अति ही अनुचित है,
फल इसका असफलता है और अहित है।

उत्तम या हितकर कर्म्म सदा दृढ़ व्रत से,
जो करे, बनेगा उन्नत वह अवनत से।
फल की विशेष अभिलाषा पर निष्फल है,
अज्ञेय सर्वदा सब कर्म्मों का फल है।

जो जन अनित्यता जान कर्म्म के फल की,
होता प्रवृत्त है आशा से निज बल की।
सम्भव है उसको इष्ट सिद्धि हो जाए,
वह अनुष्ठान या पूर्ण न भी हो पाए।

असफलता से डर कभी न कुछ करते हैं,
उनके अभीष्ट यों ही उठते मरते हैं।

हैं सिद्धि सफलता उनके लिए असम्भव,
हैं उन्हें दुखद इस जग के सभी उपद्रव।
यदि कुछ न करें तो असफलता निश्चित है,
जो करें, सफलता भी फिर सम्भावित है।

जो समझ कर्म्म-फल की अनित्यता डर कर,
आरम्भ कार्य्य का करते नहीं समय पर।
वे सुख-समृद्धि से स्वयं विमुख होते हैं,
पछताते हैं फिर आजीवन रोते हैं।
इसलिए त्याग, भय और निराशा मन से,
"है बँधी सफलता तो मेरे जीवन से।"
यह बात हृदय में निश्चय से कर धारण,
उठ, जाग यत्न कर सुख-समृद्धि के कारण।

जो सुधी नृपति, मंगलाचरण-रत रह कर,
करते आपस में सन्धि, शक्ति-संग्रह कर।
वे सहज सुयश सुख-सार सदा पाते हैं,
आदित्य पूर्व में यथा नित्य जाते हैं।
इन सब सुवस्तुओं के सुयोग्य तू सञ्जय!
जिस भाँति अभीप्सित मिले, वही कर निर्भय।

जो लोग कि तेरे रिपु - द्वारा पीड़ित हैं,
पददलित, पराजित, अपमानित, दूषित हैं।
या प्रतिद्वन्दी हैं उन्हें विनय, धन, स्तुति से,
ले मिला, युक्ति से अपनी ओर सुमति से।
इस भाँति शत्रु के उस महान् जन बल को,
कर अस्तव्यस्त, बयारि यथा बादल को।

पुरुषार्थ दिखा, बन प्रिय-भाषी उनके प्रति,
मानें जिससे वे स्वामि तुझे सब सम्प्रति।

देखे जब तत्पर शत्रु, मरण - मारण में ,
डरता प्रतिपक्षी से तब समराङ्गण में।

यदि शत्रु प्रबल हो जीता जाय न रण से ,
तो सन्धि करे या मिले सहायक - गण से।
इतने आश्रय से धन, धन से फिर जन-बल—
बढ़ता है, धन के बिना किन्तु सब निष्फल।
निर्धन होते ही मित्र, बन्धु-बान्धव-गण ,
फिर स्वतः छोड़ मिलते अरि से, निष्कारण।
यह ध्यान रहे सर्वदा मित्र संग्रह में ,
घुस जाय न कोई शत्रु, छद्म से गृह में।

राजा न भयाकुल होते कभी विपद में ,
भूलें न धर्म्म को धन-प्रभुत्व के मद में।
चिन्ता, भ्रम-भय कितना हो कभी हृदय में ,
मुख म्लान न हो अन्तर न पड़े निश्चय में।

नृप को लख चिन्तित, शङ्कित और भयातुर,
सामन्त सैन्य सब हो जाते हैं कातर।
कर देते हैं विच्छिन्न राष्ट्र को सत्वर,
दुखकर हो जाते शत्रु-पक्ष में मिल कर।

जो हुआ स्वामि से हो कोई अपमानित,
वह भूल पराये अपने सभी हिताहित।
हो जाता है सन्नद्ध, घात के हित भी,
जँचता कृतघ्न को, उचित सदा अनुचित भी।

जो सच्चे तेरे सखा, सुपात्र, स्वजन हैं,
वे हैं अशक्त, असमर्थ या कि निर्धन हैं।
अभ्युदय हुआ पर जिनका तेरे द्वारा,
तू समझ उन्हें, वह समझें तुझे सहारा।
तेरे दुख से हैं दुखी, यत्न में तत्पर,
तेरे हित आत्मोत्सर्ग करें अवसर पर।

अतएव किसी विधि कभी न शोकान्वित हो,
अपने हित न सही, मत परार्थ विचलित हो।
वह कहीं तुझे भयभीत देख, शङ्कित हो,
सब छोड़ न बैठें साथ, हताश, व्यथित हो।

पौरुष, प्रभाव, बल, बुद्धि जाँचने को सब,
जीवन-मन्त्रों से करती हूँ दीक्षित अब।
जाना यथार्थ आशय यदि तू ने मेरा,
उठ, जाग शीघ्र, हो विजयी, हुआ सवेरा।

वह इष्ट मित्र हैं बहुत सहायक तेरे,
उत्साह-विवर्द्धक सैन्य तुझे हैं घेरे।
तू नहीं जानता जिसको मैंने जाना,
है अन्तःपुर में एक अनन्त खज़ाना।
वह तुझे सौंपती हूँ, उठ अब निर्भय हो,
धन-जन-बलयुत हो खड़ा कि जिससे जय हो।

सञ्जय—

मैं रहा आदि से मौन, भयातुर आदिक,
यों ही कि छकूँ उपदेशामृत, अधिकाधिक।
है सिन्धुराज क्या एक, बहुत हों शत हों,
क्या बात कि जो सञ्जय-शर-विद्ध न हत हों।

जिस उद्बोधन से लड़ें मृतक भी रण में,
सञ्जय विजयी हो क्यों न एक ही क्षण में।
माँ! दो बस अब आशीष कि रण में जाऊँ,
झट विजयवधू को फिर से मैं वर लाऊँ।

—

श्रीगणेशाय नमः

प्रवासी

बालपुर निवासी पाण्डेय लोचन प्रसाद
द्वारा लिखित ।
और
प्रकाशित ।

दारा सुत भ्राता भगनी औ, मात पिताका सुख नित
जो देखते निठल्ले बैठेग, कर सकतेग क्या निज हित ?

राजपूत ऐंग्लो-ओरियण्टल प्रेस आगरा
में मुद्रित ।

प्रथमावृत्ति
५०० कापी

सन् १९०७
सम्वत १९६४

पुस्तक मिलने का पता:—

प्रकाशक. बालपुर. पोस्ट चन्द्रपुर,

जिला बिलासपुर C. P.

Via रायगढ़ B. N. W. Ry.

भूमिका ।

इस पुस्तिका खण्ड में एक प्रवासी अपने मनोभाव को बहिर्गत करते हुए

१—२४ लाइन तक अपने घर और ग्राम का वर्णन करता है ।

२४—४२ तक अपने देश का वर्णन कर अपने दुःख प्रकट करता है ।

४२—६८ तक मन को कहता है कि क्या तू ने लोभ, आशा, और यश के वश हो या नारी छल या विषय वासना से विरक्त हो कर घर त्यागा ।

६८—१०२ तक घर का सुख, प्रेम, नारी प्रशंसा, कर्त्तव्य और गृहस्थाश्रम का सुख वर्णन कर घर लौटने के हेतु निज मन को समझाता है ।

१०२—११६ तक मन को फेर ऊपर के प्रलाप को स्वप्न कहते हुए मोह का निरादर करते कहता है:—

दारा सुत भ्राता भगनी औ मात पिता के सुख नित ।
जो देखते निठल्ले बैठे, कर सकते क्या निज हित ?

११६—१२० तक मोह तज विदेश जाकर विज्ञान कला कौशल सीख कर देशोन्नति करने को कहता है ।

१२०—१२४ में कहता है कि:—

चलो २ मन अब प्रवास में रहो, न लौटो, सोच हरो ।
घरका मोह त्याग सुख से जग पुरुष प्रकृति गुण जाँच करो ।
सुख दुख सब जग लगा हुआ है इसे न तुम सोचो मन ।
नित आचरण सुधारो पालो निज कर्त्तव्य सुहावन ॥

१२४—२१७ तक राजा रंक, किसान नौकर, मूर्ख विद्वान्, गृहस्थ औ योगी का सुख दुःख वर्णन कर मन को समझाता है ।

२१० —२४८ तक ग्रामियों की प्रशंसा करते आलस अवज्ञा निन्दा आदि का वर्णन करता है ।

२४८—३०० तक विपुल धन की निन्दा, मदिरा का दोष, मांस भक्षण निषेध करता धनियों की प्रकृति, का वर्णन कर परोपकारियों की स्तुति गा कर पुस्तक अन्त करता है:—

धन्य २ वो पुरुष रत्न जो लेते पृथ्वी में अवतार ।
रात्रि दिवस जो परमारथ हित खुले रखै हैं निज भण्डार॥

इस में तीन प्रकार के छन्दों का समावेश है

(१) १६—१४ मात्रा
(२) १६—१२ ,,
(३) १६—११ ,,

यह ग्रन्थ 'भारतजीवन' साप्ताहिक पत्र के २४ वें भाग के १, ५, ६ और ९ वें अङ्कों में छप चुका है ।

बालपुर

विनीत
ग्रन्थकार ।

॥ प्रवासी ॥

सुख के मूल मनोहर घर से क्यों अभाग्यवश हो अन्तर ?
ठौर ठौर टकराता हूं मैं, हाय ! वृथा क्यों दुख सह कर ॥
माता पिता भ्रात भगनी औ नातेदारों का वह नेह !
मुझ पापी को मिलने का सौभाग्य न क्या सुख सम्पति गेह !
प्रिय पत्नी का प्रेमालिङ्गन-युत प्रलाप अति सुखकारी ।
हाय दैव ! सुपने में भी क्या मिले न मुझ को दुखहारी !
निज मित्रों के संग सदा जलक्रीड़ा का सच्चा आनन्द ।
झर झर करते झरनों में कर सक्ता क्या मन फिर स्वच्छन्द ?
सन्त महन्तों से सज्जित सुखमय पावन मन्दिर में फिर ।
प्रभु गुन-गान नित्य संध्या को करता था भक्तों से घिर॥१०॥
जहां ग्राम नर नारी सब मिल प्रभु-पूजन को आती थीं ।
प्रेममयी रस-भरी एकता सुख मनमें उपजाती थीं ॥
जहां शंखध्वनि नित संध्या को जन मन ताप मिटाती है ।
सुधि तक भी जिसकी अब मुझको व्यथा व्यर्थ उपजाती है ॥
हाय ! कहां वे दिवस भ्रमणाहित वन उपवन को जब जाता!
राधा माधव कथा प्रेमरस प्रमुदित वंशी में गाता ॥
वह बर पीपर नीम और अमली की छाया अति शीतल ।
कहां ! जहां नित मचते थे मध्यान्हकाल-सुख-खेल विमल॥
सुभग अतिथिसेवा का सुख वह सन्तों का उपदेश-वचन ।
ग्रीष्म काल आंगन में औ वर्षा ऋतु में निज बीच भवन॥२०॥
शीतकाल सुखधुनी पास हिलमिलजुल करके जाड़ा काट ।
देश-भक्ति परिपूर्ण [illegible] [illegible] सामाहिक का पाठ ॥

हाय ! न फिर क्या मिल सकते थे सुख सब मुझे जनम भर ?
प्रेम और उपदेश पूर्ण वे कहानियां अति सुन्दर ॥
सरस देश वह जहां पर्णकुटि रम्य पवित्र सुहावन ।
रही हुई है जन सेवा-हित अति अनुपम मनभावन ॥
धन्य धन्य वह देश परम प्रिय भाषा, वेष सनातन ।
धन्य वहां के वासी सुन्दर शुद्धचरित्र लुभावन ॥
समावेश वह देश प्रकृति से लेशमात्र नहिं छूट ।
सम-निर्झर तरु लता मनोहर चारों ओर अटूट ॥३०॥
हर लेते हैं मुनियों के मन भी सुन्दर दृश्य अमोल ।
रङ्ग रङ्ग बहुरङ्ग विहङ्गम निर्भय करें कलोल ॥
कहीं कदम्ब अम्ब मनभावन पीपर कहीं पलाश ।
अमली बर चारादिक फूलें फलें नित्य सहुलास ॥
कोयल कुञ्ज कुञ्ज कूके हैं वन वन नाचें मोर ।
ग्राम ग्राम तमचोर मुदित मन नित्य मचावें शोर ॥
कहीं दिखाते शुद्ध प्रेम अति कुल कपोत की पांति ।
कहीं विहरते हैं पारावत शुक बक खग बहु भांति ॥
झर झर झरने झरते, करते शब्द घोर जलपात ।
मर्कट कटक व्याघ्र शूकर दल विहरैं प्रमुदित गात ॥४०॥
वह सब सुन्दर शोभा क्या रे दृष्टि मुझे मिल सकती है ?
आँसू से तन धो धो कर तू 'नहीं नहीं' नित कहती है !
लोभ-फाँस से फँस कर क्या तू विमुख हुआ रे पापी ।
हाय ! हुआ सुतवित वनिता-गृह सुख तजि पश्चातापी ॥
दुष्ट लोभ जन बुद्धि भ्रष्ट कर तृष्णा नित उपजाता है ।
जो सुखदायी हो लोगों को जग परलोक नसाता है ॥
बधिर अन्ध करके लोगों को दौड़ाता है इधर उधर ।
भूख प्यास मरजात[illegible] छुड़वा कर ॥

लोभ क्रोध उपजाता है औ काम-बीज बोता लाकर ।
लोभ मोह का भी कारण है और पाप का भी है घर ॥५०॥
अर्जन से दुख मिलता होता विपत समय में दुखकर ।
मतवाला करता सम्पति में तो धन कैसा सुखकर ?
उस तृष्णारूपी विष को अब त्याग अरे लोभी मन !
सन्तोषामृत पान करो अब तजो तजो आशा-धन ॥
राजा और रङ्क में कुछ भी भेद न तब पावेगा ।
लोभरहित समदृष्टि जगत् में सुख से दिन जावेगा ॥
या यश के कारण त्यागा मन तूने अपना प्रिय घर ।
तो तू मूढ़ अनाड़ी है रे काम न किया सोच कर ॥
यश किस को कहते हैं, क्या तू सपने में भी गिरकर ।
सोचा ध्यान लगाया थोड़ा अपनी बुद्धि लड़ाकर ॥ ६० ॥
यश तो निश्चय है अस्थिर, चञ्चल, अकाशके पुष्प समान ।
यद्यपि इन्द्रधनुष सम सुन्दर है पर नश्यवान् झट जान ॥
पानी के बुलबुले सरीखे यश क्षणभंगुर है जानो ।
इसके लिये न भटको प्यारे बात सत्य यह है मानो ॥
नारी-कुल या विषय वासना से तू विरक्त होकर ।
जग झंझट से अपना नाता तोड़ा क्या कर धोकर ?
करो न ऐसा ऐ मन प्यारे तजो न अपना सुख-घर ।
मेरा कहना मान भवन तू जा निश्चय अब फिर कर ॥
ध्यान लगाके देखोगे तो पाओगे तुम निश्चय ।
स्वर्ग सुखालय कुटी रम्य तब शान्तिमयी औ निर्भय ॥७०॥
यद्पि क्लेश औ दुःख नरों को घर में घेरे रहते हैं ।
पर वे सहनशीलता से फिर सुख से मालुम पड़ते हैं ॥
अजर अमर अनादि अविनाशी निर्विकार जग प्राणाधार ।
शुद्ध प्रेम ही के [illegible] सुखद्वार ॥

पिता पुत्र दारा भगनी जननी भ्राता कुटुम्ब परिवार।
केवल सत्य प्रेम के बल से करते निज कर्त्तव्य सुधार॥
लवण बिना भोजन जैसा नीरस फीका हो जाता है।
वैसा ही संसार प्रेम बिन निपट असार दिखाता है॥
इस से केवल प्रेम तत्व ही को तुम खूब विचारो।
जानो तो ईश्वर को पाओ शङ्का शोक निवारो॥ ८७॥
नारी से भी विमुख न हो तू नित कर उसका आदर।
नारी-यश फैला है जग में देखो आंख उठाकर॥
क्या बालक क्या वृद्ध युवा सब उसका ही गुन गाते हैं।
गाते गाते मर भी जाते तो भी नहीं अघाते हैं॥
नारी जग की माता है तू उस से रूठ न रे मन।
नेति नेति कह स्त्री-चरित्र को वेदादिक करते गायन॥
विषय वासना माना मैं ने यद्यपि दुख का द्वारा है।
लिप्त देख पड़ते इस में भी साधु मुनी जग सारा है॥
इस से हो न विरक्त चेत मन सुखमय कर निज जीवन।
सहनशीलता-युत कर नित तू निज कर्त्तव्य सुहावन॥९०॥
केवल है कर्त्तव्य अकेला सच्चा सुख देने वाला।
यही निबल को सबल बनाता दुख दारिद हरने वाला॥
पतित देश को उन्नतिशाली यही अकेला है करता।
शूर वीर कविराज कोष को यश रूपी धन से भरता॥
पुनः देख चारों आश्रम में है गृहस्थ आश्रम बढ़कर।
वानप्रस्थ संन्यासी और ब्रह्मचारी का होकर घर॥
जिस प्रकार नद नाले गिरते अन्त उदधि में जाकर।
सभी आश्रमी पाते हैं विश्राम गृहस्थों के घर॥
भिक्षा ब्रह्मचारियों को औ संन्यासी को दे भोजन।
वानप्रस्थ लोगों को देते वही गृहस्थी है नित धन॥१००॥

इस प्रकार तीनों आश्रम के पोषण का वह पुण्य विमल ।
है गृहस्थ का भाग ज्ञान तू सम्पादन कर इस में चल ॥
यह क्या स्वप्न देखता था मैं मोहपूर्ण कुविचार ।
जो आये हैं मेरे मनमें हाय महा निस्सार ॥
नहीं नहीं यह स्वप्न नहीं, है वही अलौकिक प्रीति ।
सब स्वदेश प्रेमी जन जिसको गाते हैं सब रीति ॥
यह है जन्म भूमि का—सच्चा स्वाभाविक अनुराग ।
जिसे पुरुष क्या पशु पक्षी भी भूल न सकें अभाग ॥
अरे अरे मन मोहफन्द में पड़ क्यों सुत वित का ले नाम ।
विषयवासना का वर्णन करता था रो रो कर अभिराम ?११०
अरे मोह ! क्या अबतक तू मम मन को कलुषित करता है ।
अन्धकार आच्छादित कर मम ज्ञान शक्तिको हरता है ॥
तेरे फन्दे में पड़कर नर महापाप सब करते हैं ।
कभी न अपनी उन्नति और देश-उन्नति कर सकते हैं ॥
दारा सुत भ्राता भगनी औ मात पिता के सुख नित ।
जो देखते निठल्ले बैठे कर सकते क्या निज हित ॥
छोड़ मोह अब चलिये प्यारे दूर देश को होय मगन ।
विद्या औ विज्ञान कलाकौशल पढ़ने हित कर दृढ़ मन ॥
जाति देश औ धर्मोन्नति निज करिए छोड़ व्यर्थ अभिमान
ऐक्य प्रेम आत्मावलम्ब का करो प्रचार सभी दे ध्यान ॥१२०
चलो चलो, अब तुम प्रवासमें रहो, न लौटो, सोच हरो ।
घरका मोह त्याग सुखसे जग पुरुष प्रकृति गुण जाँच करो ॥
सुख दुख सब जग लगा हुआ है इसे न तुम सोचो मन !
नित आचरण सुधारो पालो निज कर्त्तव्य सुहावन ॥
राजा जिसको सुखी कहें सब वे भी ऐसे कहते हैं ।
बार २ धिक्कारें निज मुख चिन्ता दुख नित सहते हैं ॥

निद्रा मुझे न सुख से आती आते सिर में चक्कर ।
हाय! ईश तू दिया मुझे क्यों ऐसा दुख राजा कर ॥
सुखी रङ्क ही है निश्चय जिसको कुछ भी चिन्ता न विचार ।
मुट्ठी भर पाके मनमाने सोता सुख से पैर पसार ॥ १३० ॥
पुनः रङ्क को भी तुम देखो रोता अपना सिर धर ।
सेठ महाजन धनी गुनी का गाता यश रो रो कर ॥
कोई नहीं पूछता मुझको टकराता मैं इधर उधर ।
पशु के तुल्य निठल्ले फिरता हा मांगते भीख घर घर ॥
राजा धनी सुखी हैं जो नित घोड़े गाड़ी में आते ।
हम ऐसे लाखों गरीब को पाछे पांछे दौड़ाते ॥
जिधर जाँयगे उधर लोग सब उनको शीश झुकाते हैं ।
बात पूछना रहा दूर हम नित प्रति गाली खाते हैं ॥
कहीं किसान काम दुःखका यह कभी आराम न मिलता है ।
मर मर नित्य कमाते तौ भी पेट नहीं हा भरता है ॥१४०॥
कठिन क्लेश है ग्रामिण होना पढ़ने लिखने का न सुपास ।
लोग करैं नहिं मान बड़ाई उलटे करते हैं उपहास ॥
भूमि अटपटी घास फूस औ कर्दम कीचड़ वर्षा घाम ।
भूख प्यास आराम नींद को जाने जो नहिं घाले दाम ॥
काम किसानी का वे करते रखते जो हैं समय प्रबन्ध ।
नहीं नौकरी ही अच्छी है करैं न खेती परैं न फन्द ॥
नौकर सुख से चार घड़ी नित कर अपनी चाकरी अचल ।
स्वेच्छाचार विहरता रहता है निर्भयचित्त मग्न अटल ॥
पानी बरसे काल परे है उन को हाय ! दुःख नहिं लेश ।
रुपये ठनाठन गिनलेते हैं इसमें कुछ भी मीन न मेष ॥१५०॥
रसद बिगारी फोकट गारी इन सब का झंझट दुख मूल ।
अहा ! उन्हें नहिं व्यथित चित्त वह भी कदापि कर सक्ता मूल

नौकर भी रोते हैं नित प्रति गा गा करके निज दुख गान।
सेवासम अति दुखद वृत्ति जग में कोई भी है नहिं जान॥
स्वतन्त्रता सुखका अनुभव हम कभी नहीं कर सकते हैं।
आन बड़ाई स्वाहा कर पूजा न ध्यान धर सकते हैं॥
देशोन्नति नहिं देशभलाई कर सकते होकर नौकर।
गालों का कहना हां क्या जूते तक भी लगते सिर पर॥
अहा! किसानों को चिन्ता है नहीं एक भी तुम लो देख।
वे नित तनमन धनसे करते प्रफुलित होकर काम अनेक॥१६०॥
पाते दूध गाय से वे औ खेतों से भोजन भाई।
भेड़ों से वस्त्रादिक पाते जीवन सब विधि सुखदाई॥
वन के वृक्ष ग्रीष्म ऋतु में सब छाया उनको देते हैं।
जो हो अग्नि शीत ऋतु में फिर शीत निवारण करते हैं॥
स्वेच्छा से फिरते रहते हैं किसी का नहीं रक्खें डर।
दुष्टों के नहिं दास बनें औ नाश करें नहिं अपना घर॥
सांझ समय वे सब घर आकर के करते हैं प्रभु गुण गान।
उत्तम भोजन निर्म्मल जल फिर सुख पूर्वक करते हैं पान॥
रात्रिसमय निश्चिन्त होय कर सुख से सोते पैर पसार।
प्रातः उठे स्वस्थचित से औ चले खेत को वे फिर यार॥
मन्द सुगन्धित प्रातवायुका सुख पूर्वक करते हैं पान।
सदा निरोगी रहते उनको रोग शोक नहिं होता, जान॥
चलते खाते और कमाते होवे कभी न उन को ताप।
और भजन प्रभुका नित करते कटता है जिससे सब पाप॥
मूर्ख करै रोदन हा! ईश्वर तू क्यों हम को जन्म दिया।
व्यर्थ हमारे जीवन को बिन विद्या जग में विफल किया॥
जाते हम हैं जहां वहां से व्यर्थ निकाले जाते हैं।
हंस सभा में ज्यों बक की गति वैसा ही दुःख पाते हैं॥

जग का हम पापी से कुछ भी हाय! भला हो सका न राम।
पशु से भी निःसार हुए पशु तो कुछ आते भी हैं काम ॥१८०॥
अहा धन्य वे पण्डितजन जिन से यह पृथ्वी हो शोभित।
निज गौरव औ मान बड़ाई सदा बढ़ाती गर्व सहित ॥
पण्डित करें प्रशंसा मूरख की निज दुःख कर कर वर्णन।
पढ़ पढ़कर विद्या क्यों हम सब नष्ट करें निज तन मन धन।
खिन्न शरीर हुआ पढ़ पढ़ के रोग करें हम को निज घर।
चिन्ता ज्वर जर्जरित रात दिन नींद न आती हा! हर हर
लिखें लेख पुस्तक कविता तो लेयँ समालोचकगण धर।
हाय हमारी चोटी करते दुर्गति गाली दे दे कर ॥
कहें बने ये ग्रन्थकार नहिँ माने 'ब व' में भी कुछ भेद।
'श को ष स' लिखते ये क्या पुस्तक लिख सकते मूढ़ अचेत १९०
मूरख इस से सुख से जीते उनको होय न शोक फिकर।
रहते जग झंझट से हट कर विहरें सुख से इधर उधर ॥
कहते दुख से गृही दुःखमय जग में सब से मम जीवन।
चिन्ता शोक वियोग रोग नित क्षीण करें हैं तन मन धन ॥
जन्म मृत्यु शादी विवाह का भार पार नहिं पाता हूं।
इस असार संसार दुक्ख से हार तभी मैं खाता हूं ॥
घोर कलह घर में होती है लड़ते हैं नित घर भर।
पाठ न पूजा दई! रखा क्यों इस झंझट में लाकर ॥
सुखी वियोगी योगी जो निश्चिन्त विहरते वन में।
प्रभु गुणगान मगन हो करते फिरते नित कुंजन में ॥२००॥
पान करें झरनाजल निर्मल कन्दमूल भोजन कर।
सुख से दिवस बिताते चिन्ता रोग शोक सब तज कर।
योगी भी निज दुख वर्णन कर दृग आंसू भर लाते हैं।
भूख प्यास आराम घाम सह वन में हम दुख पाते हैं ॥

सिंह व्याघ्र शूकर सर्पादिक का है हमको छिन छिन डर।
पर्वत की जल वायु बुरी अति जो सब रोगों का है घर॥
वन में एक न हितू हमारे रोग शोक हरने को।
ईश! पड़े नहिँ अन्य जनों को योगी दुख सहने को॥
सुखी गृहस्थी जग में हमने देखा खूब विचारा है।
निर्भय रहतीं सुत पितु माता भ्राता भगनी दारा है॥२१०॥
रखते सब से प्रेम परस्पर करते हिलमिल करके काम।
खाते, देते दीन दुखी को सुख से लेते हरि के नाम॥
इस प्रकार का सुख दुख सारे जग में व्यापा है सुन मन!
जगका धर्म्म स्वभाविक सुख दुख सोच हरो कर प्रफुलित तन
इस तनरूपी रथ घोड़े की बाग तुम्हारे कर में मन।
जिधर फिराओ उधर फिरेगी दशों इन्द्रियां निर्भय बन॥
पुनः तुम्हीं हो कारण प्यारे बन्धन मोक्ष नरों के।
दृढ़ पवित्र तुम आप बनो गुण देख देख अपरों के॥
जीते हैं ग्रामीण सुक्ख से उन्हें नहीं संसारी पाप।
छू तक भी सकता, रहते वे शुद्ध चरित्र, विचारो आप॥२२०॥
वे दृढ़ हो पालन करते नित शाश्वत धर्म्म सत्य आचार।
अन्न स्वअर्जित से दिन काटें असत नहीं उनको दरकार।
निज गौरव का ज्ञान सदा अभिमानयुक्त वे रखते हैं।
दुष्ट आदमी के सदृश निज निन्दा कभी न करते हैं॥
कारण आत्मअवज्ञा कर कर रोता है जो नर वञ्चक।
कभी नहीं वह अपनी उन्नति कर सकता सिर पटक पटक॥
मैं कुछ भी हूं नहीं बात यह निरुत्साह उपजाती है।
नस २ ढीली कर देकर सब मन की शक्ति घटाती है॥
निज निन्दा जो करते वे नर उन्नति कभी न कर सकते।
ठौर २ दुख पाते हैं, बस इधर उधर निशि दिन बकते॥२३०॥

झूठी निन्दा कभी नहीं वे करना अच्छा माने हैं।
सदा सत्य निन्दा ही से जग लाभ सदा अनुमाने हैं॥
निन्दा दो प्रकार की है तुम सुनिये केवल यह है सार।
एक मोह अविवेक युक्त औ अन्य युक्त दृढ़ता सुविचार॥
सभ्य समाज रसातलगामी वा उच्छृङ्खल होने से।
केवल दृढ़तायुत निन्दा ही उसे रखे यश खोने से॥
कायर को यह शूर बनावे अपढ़ सुपण्डित करती है।
योगी को संयोगी कर आलस प्रिय घर धन भरती है॥
ईर्षा द्वेष क्रोध मन उन में कभी नहीं तुम पाओगे।
साधु सरलता सहिष्णुता सच्चरिता गुण पाओगे॥ २४० ॥
पर इन के दुख का कारण एक विषय मैंने पाया।
जग का कुछ उपकार न वे कर सकते दुख भरमाया॥
जन सेवा हित द्रव्य नहीं यह डङ्क मारता उनको नित।
तन मन को दुख पहुंचाता औ चिन्तित करता उनके चित॥
क्योंकि द्रव्य ही के कारण सब महा पुरुष कहलाते हैं।
कवि पण्डित ज्ञानी मानी सब धन ही का गुण गाते हैं॥
धन से धर्म्म, धर्म्म से सुख यह नीति सनातन है सुन्दर।
धन से विद्या मान बड़ाई धन से नर पाते आदर॥
करैं न सद्व्यवहार द्रव्य का तो उस जन को है धिक्कार।
दीन दुखी को सुखी न कर जो पेट भरै निज बारम्बार॥
जाति देश की उन्नति ही के लिये धनी जन रहते हैं।
करते पर उपकार सदा वे स्वयं दुःख सक सहते हैं॥
किन्तु विपुलता जहँ धन की वे धनी पाप के होते घर।
करैं कुकर्म्म अधर्म्म नित्य सब विषय वासना अपना कर॥
कुछ विचार नहिं खान पान में मदिरा आमिष चख कर।
मद से होते मस्त दुष्ट पापी लोगों को रख कर॥

मदिरा कैसी हानिकारिणी उसको ये क्या जाने हैं ?
सब रोगों का घर है जिस को द्वार स्वर्ग का माने हैं ॥
क्षीण करै नित तन मन धन को निरुत्साह उपजाती है ।
नस २ ढीली कर देकर के पाचन शक्ति घटाती है ॥१६०॥
कलुषित करती शुद्ध बुद्धि को करै भिखारी हा ! नर को ।
दारा सुत से विमुख कराके फिरवाती है घर घर को ॥
आमिष खा खा जो सुख पाते उन लोगों को है धिक्कार ।
अरे नराधम ! निर्बल पशु को मार यहाँ करते उपकार ॥
रज वीर्य्यादिक घिन उत्पादक वस्तु मात्र से बनी हुई ।
अस्थि चर्म्म मल पीप रक्त कफ मूत्र मेद से सनी हुई ॥
अति अपवित्र अपावन ऐसी घृणित प्राणियों की यह देह ।
हाय ! गटकते सुख से उसको पुनः पुनः छिः करते नेह ॥
जिस प्रकार कुत्ता अति सुख से हाड़ चूसता अरे अचेत !
उसी प्रकार चूसता तू तो कुत्ते औ तुझ में क्या भेद ॥२७०॥
चिंवटी भी यदि तुझ को काटे तो तू करता दुख चिक्कार ।
निष्ठुर ! सोच, प्राणियों को फिर होगा क्या नहिं क्लेश अपार॥
तज इस से पाशविक कार्य्य तू निष्ठुर दया दीन पर कर ।
वेद पुराण अहिंसा ही को गाते परम धर्म्म कह कर ॥
मद से हो कर मस्त भूल वे जाते निज समानता ज्ञान ।
'मेरे से अब नहीं बड़े' यह कह मन में करते अभिमान ॥
अपने जाति भाइयों के घर जाना पाप समझते हैं ।
अहं भाव से भरे हुए धन मद से माते रहते हैं ॥
कुल विरुद्ध बातें करने को कभी नहीं वे डरते हैं ।
वेद शास्त्र की हंसी कर ईश्वर का डर नहिं रखते हैं ॥
खाओ पीओ मजा उड़ाओ यही मुख्य उनका सिद्धान्त ।
पाप पुण्य कुछ नहीं जगत में यह तो केवल है मन-भ्रान्त ॥

इन पुरुषों की प्रकृति देखकर हुआ चित्त चिन्तित मेरा।
जिनका कलुषित मन सब अवगुण और पाप का है डेरा॥
अधिक प्यार वे सब करते हैं अपने लोगों को नित आप।
सत्यासत्य विचार छोड़कर करैं भाइयों के हित पाप ॥
यद्यपि वे एकता इसे कहते हैं मद औ गर्व सहित।
छिः छिः पर वह नहीं एकता जो है कलुषित न्याय रहित
शीलवान वे पुरुष न्याय जो करते हैं समभाव सदा
जग के मङ्गल से निज मङ्गल जग-विपदा से निज विपदा॥
धनी स्वार्थ से लिप्त नहीं परमारथ का कुछ उनको ज्ञान
अपने काम साधने को वे जग को देते दुःख महान्
हो जाते हैं अन्ध स्वार्थ से लोक लाज सब बिसराकर
अपने शीत निवारण के हित देते जला पड़ोसी घर
साधू या योगी आवै यदि उनके घर भिक्षा के हित
अतिथि सु आदर दूर रहा गाली देते हो क्रोधित चित
इनसे क्या उपकार देश का हो सकता है देख विचार
ये तो भार-रूप हो जग को सिखलाते पाखण्ड प्रचार
धन्य २ वे पुरुष रत्न जो लेते पृथ्वी में अवतार
रात दिवस जो परमारथ हित खुले रखे हैं निज भण्डार॥३०॥